पाठ्योपयोगी पुस्तकमाला

सरल शब्दानुशासन

(हिन्दी का मौलिक संक्षिप्त व्याकरण)

लेखक,

पं० किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री

प्रकाशक,

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
मुद्रक—महताबराय, नागरी मुद्रण, वाराणसी
प्रथम संस्करण, संवत् २०१५, २१०० प्रतियाँ
मूल्य,

वन्दे वाणीविनायकौ

लेखक का निवेदन

यह 'सरल शब्दानुशासन' हिन्दी का प्रारम्भिक व्याकरण है। व्याकरण-प्रवेशिका समझिए। परन्तु 'व्याकरण-प्रवेशिका' नाम की हिन्दी में एकाध पुस्तक पहले से विद्यमान है। इस लिए—भ्रम से बचने के लिए—इस का नाम 'सरल शब्दानुशासन' रखना ही ठीक समझा गया। व्याकरण का ही दूसरा नाम 'शब्दानुशासन' भी है। 'सरल शब्दानुशासन' नाम रखने से यह भी समझ में आ जाता है कि यह पुस्तक हिन्दी के महाव्याकरण 'हिन्दी शब्दानुशासन' के आधार पर है।

'हिन्दी शब्दानुशासन' लगभग सात सौ पृष्ठो का है। बडे आकार के पृष्ठ हैं। व्याकरण की साधारण और प्रसिद्ध बाते उस में दी नही गई हैं। मौलिक विवेचन ही संक्षेप से है। तो भी इतना बड़ा ग्रन्थ बन गया।

ऐसी स्थिति मे वह सब के लिए सुलभ न रहे गा। फिर, उसे समझने के लायक इस विषय का प्रारम्भिक ज्ञान भी अपेक्षित है। सब के बस की वह चीज नहीं है। हिन्दी-व्याकरण की यह एक नई दिशा है। इस लिए अन्य हिन्दी-व्याकरणो के ज्ञान से काम चलने का नहीं। नए व्याकरण की नई प्रवेशिका चाहिए, बहुमूल्य होने पर भी जो सुलभ हो, जो सरल हो, और जिस मे प्रायः सभी विषयो का संक्षेप में स्पष्ट प्रतिपादन हो। ऐसी पुस्तक के लिए विद्वानो ने कामना प्रकट की और 'सभा' के साहित्य-मंत्री डा० श्रीकृष्णलाल जी ने मुझ से ऐसी एक पुस्तक लिख देने के लिए कहा, जिस मे सौ-डेढ सौ से अधिक पृष्ठ न हो और व्याकरण की प्रायः सब बाते संक्षेप से आ जाएँ। आप का

सुझाव मुझे भी अच्छा लगा और मै ने इस के लिए जो विशेष सुविधा चाही, 'सभा' ने मुझे दी। इस के लिए मै 'सभा' को—विशेषतः डा० श्रीकृष्णलाल को—हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

यह पुस्तक यद्यपि वयस्क छात्रो को ही ध्यान मे रख कर लिखी गई है; परन्तु इस से हिन्दी के वे विद्वान् भी लाभ उठाएँ गे, जिन की छात्रावस्था मे वे पुराने व्याकरण प्रचलित थे। जिन के पास समय कम है, वे भी इस से उपकृत हो गे।

मेरा लिखा 'राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण' कुछ ऊँचे दर्जे का है। मैट्रिक, प्रथमा, या 'प्रवेशिका' के छात्रो के लिए वह इतना उपयोगी नही और प्रतिपाद्य विषय भी उस मे इस ढंग से ब्यौरेवार नही है। वह वस्तुतः छात्रो के लिए लिखा भी नही गया था। विद्वानो के लिए ही उसकी उद्भावना की गई थी। एक नई चीज विचारार्थ-परीक्षार्थ उपस्थित की गई थी। 'प्रथम' विशेषण इस अभिप्राय से था कि इस से पहले बने हिन्दी के 'व्याकरण' तत्त्वतः व्याकरण नही हैं और इस लिए यही हिन्दी का पहला व्याकरण है—'राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण'। उस 'प्रथम' व्याकरण का या व्याकरण के प्रारूप का समुचित आदर हुआ। उस मे दिए गए मौलिक तत्त्वो का कही कोई अंशतः भी निरसन नही हुआ। हिन्दी के महान् शब्दशास्त्रियो ने उसे मान्यता दी और उस के बृहद् रूप की कामना प्रकट की गई। उसी का फल 'हिन्दी शब्दानुशासन' है, जिस का लघु रूप यह पुस्तक है—'सरल शब्दानुशासन'।

मैट्रिक, प्रथमा तथा प्रवेशिका जैसी परीक्षाओ के छात्रो को ध्यान में रख कर ही यह पुस्तक लिखी गई है। 'राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण तो 'विशारद' या इंटरमीजिएट जैसी परीक्षाओ के ही योग्य ठहरता है। बी० ए०, एम० ए०, तथा 'साहित्यरत्न' जैसी परीक्षाओ के लिए

'हिन्दी शब्दानुशासन' उपयोगी है, जिस में भाषाविज्ञान का भी पुट है। यह जो कहा जाता था कि व्याकरण तो मैट्रिक या प्रथमा परीक्षा तक के लिए ही है, सो तब तक के व्याकरणो के लिए ही था। कारण, उन्ही साधारण बातो का फैलाव-फुलाव आगे बडे ग्रन्थो मे होता था। परन्तु अब हिन्दी के स्वरूप पर तात्त्विक विचार हुआ है और उसका अपना विशिष्ट व्याकरण तयार हो गया है, जो बडे विद्वानो के लिए भी उपादेय तथा मनन करने योग्य है। इस का आगे कुछ विकास भी हो गा। पहले की तरह अब व्याकरण मंजाक की चीज नही, मनन करने योग्य शास्त्र है। उसी शास्त्र की यह प्रवेशिका आप के हाथ में है।

इस पुस्तक में वे बातें नहीं दी गई हैं, जो साधारणतः सातवें-आठवे दर्जे तक छात्र जान-समझ लेते हैं। पिष्ट-पेषण से पुस्तक का कलेवर बढ जाता और दाम भी बढ जाते! दूसरी बात यह कि कृदन्त-तद्धित के सब प्रत्यय नही दिखाए—गिनाए गए हैं। निदर्शन के लिए ही सब कुछ है। परन्तु इस ढॅग से सब कहा गया है कि कोई भी छात्र-पाठक आगे अपनी प्रज्ञाकलपना से भी कुछ समझ ले। व्याकरण में निदर्शन ही मुख्यतः होता है। सभी प्रत्ययो की लंबी सूची देना हो, तो वह पृथक् चीज है। परन्तु चाहे-जैसी और चाहे-जितनी बड़ी सूची देने पर भी कोई किसी जन-प्रचलित भाषा के लिए यह नही कह सकता कि उस के सभी शब्द-प्रयोग सामने रख दिए गए हैं। इसी लिए 'उपलक्षण' से काम लिया जाता है—'लक्षणेन तु सिद्धानामन्तं यान्ति विपश्चितः।' फिर, छात्रो के लिए तो इसका विशेष ध्यान रखना होता है। भारी-भरकम ग्रन्थ परेशानी मे डालता है और काम की चीजे बडे जमघट में खो जाती हैं। उन्हे कौन ढूॅढ़े-पहचाने! यही सब सोच कर इस लघुकाय पुस्तक की रचना है। परन्तु इस लघु चीज को आप एक ऐसा छोटा-सा दर्पण समझिए, जिसमे हाथी—जैसा महाप्राणी भी

पूरे का पूरा और साफ-साफ ज्यो का त्यो दिखाई देता है। कही कोई अंग न सामने हो—न प्रतिबिम्बित हो, यह अलग बात है। परन्तु उस का बहुत बड़ा रूप सामने आ जाता है। वही स्थिति इस पुस्तक की है। व्याकरण के प्रायः सभी तत्त्व इस में संक्षेप से बहुत स्पष्ट दिखाई दे गे। चीज नई है, ढँग नया है, इस लिए (खूब समझाने के लिए) कोई-कोई बात कई तरह से कई-कई बार कही गई है। पर पिष्ट-पेषण नही है।

'नाऽमूलं लिख्यते किञ्चित्,
नाऽनपेक्षितमुच्यते'

संस्कृत-काव्यो को नव जीवन देने वाले महान् साधक श्री मल्लिनाथ ने सर्वत्र कहा है—'नाऽमूलं लिख्यते किञ्चित्, नाऽनपेक्षितमुच्यते'—निराधार कुछ कहा न जाए गा और न अनावश्यक ही कुछ कहा जाए गा। इस जन ने मल्लिनाथ का यह आदर्श-वाक्य सदा सामने रखा है। निराधार यहाँ कुछ भी नहीं है। सब कुछ तथ्य ले कर है—सप्रमाण है। व्याकरण मे आधार या प्रमाण बाहरी नहीं होते। भाषा की प्रकृति और भाषाविज्ञान के मूल तत्त्व ही यहाँ प्रमाण हैं। उन्ही के आधार पर तर्क चले गा। भाषा की प्रकृति के विरुद्ध जो बात हो गी, वही गलत। यहाँ यह कह कर काम न चले गा कि संस्कृत मे ऐसा होता है, इस लिए यहाँ भी होना चाहिए। भाषा-भेद है, व्याकरण भी भिन्न गति पकड़े गा। इसी तरह प्राकृत-अपभ्रंश आदि भाषाओ की बात है। साहित्य-प्राप्त 'प्राकृत' भाषाएँ वस्तुतः 'प्राकृत' नहीं हैं—संस्कृत शब्दो की अप्राकृत तोड़-मरोड़ हद से ज्यादा वहाँ है—नैसर्गिक विकास दिखाई नही देता! संसार की किसी भी भाषा के शब्द 'ण' से नही शुरू होते, पर इन प्राकृतो मे णकारादि शब्दो की बुरी तरह भरमार है! क्या यह मिठास है? क्या जनता कभी इस

तरह बोलती हो गी ? बोलती थी, तो फिर बदल कर 'न' पर क्यो आ गई ? विचित्र बात है !

खैर, हम माने लेते हैं कि प्राप्त 'प्राकृत' भाषाएँ असली प्राकृत हैं। परन्तु तो भी, हिन्दी (राष्ट्रभाषा) का इन प्राकृतो से कोई संबन्ध बैठता नहीं है। इन प्राकृतो मे तथा आगे की 'अपभ्रंश' भाषा मे क्रिया-पद तिङन्त है—स्त्रीपुंवर्ग में रूप बदलते नहीं हैं। परन्तु यहाँ :—

लड़का जाता है

और

लड़की जाती है

यो रूप—भेद होता है। तो फिर यह हिन्दी किस 'प्राकृत' या 'अपभ्रंश' का विकास है ? यह वर्ग-भेद यहाँ कैसे आ गया ?

वस्तुतः उस 'प्राकृत' मे साहित्य बना नहीं और बना भी हो, तो उपलब्ध नही, जिस से हिन्दी (राष्ट्रभाषा) का उद्भव है। मेरठ और उसके इधर-उधर की 'बोली' का ही सुसंस्कृत रूप यह 'हिन्दी' है। वहाँ बोला जाता है—'भैंसा **जात्ता** है' 'भैंस **जात्ती** है'। 'जाता' 'जाती' कर के हिन्दी (राष्ट्रभाषा) का रूप। जिस प्राकृत-अपभ्रंश से मेरठी बोली का संबन्ध है, उस का रूप सामने है नहीं। यदि उस में साहित्य बनता, या मिलता, तो हिन्दी का व्याकरण बनाने मे उस से मदद मिलती। सो है नहीं !

जब संस्कृत और प्राकृत-अपभ्रंश का ही पूरा सहारा नही, तब अंग्रेजी या अरबी-फारसी आदि की तो कोई बात ही नही !

परन्तु तो भी, हिन्दी ने प्रयोग-पद्धति बहुत कर के संस्कृत की अपनाई है, यह इस पुस्तक में आगे आप स्वयं देखे गे। संभव है, कुरुजनपद (मेरठ डिवीजन) मे बोली जाने वाली 'प्राकृत'-'अपभ्रंश'

भाषा संस्कृत की प्रयोग-पद्धति से उतनी दूर न जा पड़ी हो, जितनी दूर अन्य 'प्राकृत'-'अपभ्रंश'।

परन्तु हिन्दी ने संस्कृत से भिन्न मार्ग भी पकड़ा है और विचित्र बात यह है कि जहाँ-जो भिन्न मार्ग है, अधिक वैज्ञानिक तथा कलात्मक है।

खैर, हिन्दी का व्याकरण हिन्दी के अनुसार है, न संस्कृत के अनुसार, न प्राकृत के अनुसार और न अंग्रेजी आदि के ही अनुसार।

और 'नाऽनपेक्षितमुच्यते'। अनावश्यक कुछ भी नहीं है यहाँ। फैलाव-फुलाव के लिए जगह भी नही। संस्कृत के 'ने+अन='नयन' और 'भौ+अ='भाव' जैसी सन्धियो का भी यहाँ बखेड़ा नहीं। हिन्दी में 'ने' तथा 'भौ' जैसी कोई चीज है नहीं। यहाँ बने-बनाए शब्द 'नयन' 'भाव' आदि गृहीत हैं। हाँ, अ+इ='ए' तथा अ+उ='ओ' जैसी सन्धियाँ यहाँ अपेक्षित हैं—'धनेश' 'सुधोपम' आदि प्रयोगो में काम पड़ता है। इस तरह की सन्धियाँ आठवे दर्जे तक आ जाती हैं, इस लिए यहाँ पँवारा नही। याददिहानी के लिए अन्त मे थोड़ा सा लिख दिया गया है। हिन्दी की 'अपनी' सन्धियाँ अवश्य ध्यान देने योग्य हैं, जिनका परिचय पुस्तक मे सर्वत्र मिले गा और अन्त मे भी याद दिला दी गई है। 'विवृत' 'संवृत' आदि 'प्रयत्न' भी यहाँ आवश्यक नहीं; इस लिए छोड़ दिए गए हैं।

इस छोटी-सी पुस्तक से हिन्दी के एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति हुई है। एक मार्ग बन गया है।

कनखल (उ० प्र०)
५–१–५६

किशोरीदास बाजपेयी

निर्देशिका

पहला खंड

दूसरा खंड

(क्रिया-प्रकरण)

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

सरल शब्दानुशासन

पहला खंड

पहला अध्याय

उपक्रम

भाषा के शब्दो की बनावट तथा उन की प्रयोग-विधि पर जो विचार किया जाता है, उसे 'शब्दानुशासन' कहते हैं। 'शब्दानुशासन' का ही दूसरा नाम 'व्याकरण' है। भाषा की गति स्वतंत्र होती है। उस का नियमन-नियंत्रण व्याकरण नही करता, प्रत्युत वह (व्याकरण) ही भाषा का अनुगामी होता है। कोई नदी जहाँ से निकलती है और जहाँ-जहाँ होती-घूमती जहाँ किसी समुद्र-खाडी आदि में जा गिरती है, उस का वैसे का वैसा ही वर्णन 'भूगोल' है। यानी 'भूगोल' उस नदी की स्थिति-गति का अनुवर्तन करे गा, वही सब कुछ वर्णन करे गा। यह नही हो सकता कि भूगोल में जिस नदी का जो रास्ता जहाँ कर-लिख दिया जाए, वह नदी उस ('भूगोल') की आज्ञा मान कर अपना रास्ता वैसा ही बना ले! इसी तरह भाषा का अनुगमन व्याकरण करता है।

व्याकरण का प्रयोजन

शब्दानुशासन या व्याकरण का प्रयोजन भाषा की अङ्ग-प्रत्यङ्ग जानकारी है। हम अपनी भाषा स्वतः शुद्ध बोल लेते हैं; परन्तु उस की बनावट की जानकारी हमें नहीं होती, जब तक व्याकरण का सहारा न लें। किसी ने कोई व्याकरण पढ़े बिना ही वह सब जान लिया, तो वह भी व्याकरण ही हुआ। वह अपनी जानकारी लिख-बता देता है, तो दूसरे भी जान लेते हैं। सब लोग अपने हाथ-पावो से और आँख-कान आदि से ठीक-ठीक काम लेते हैं। इस के लिए हमे 'शारीर-शास्त्र' नही पढना पडता; परन्तु इन अङ्गो की बनावट हमे 'शारीर-शास्त्र' से ही मालूम हो गी। शारीरशास्त्री भी इन अंगो से उसी तरह काम लेता है, जैसे अन्य जन-प्राणी; परन्तु उसे इन की बनावट आदि का पूरा ज्ञान होता है। यही स्थिति भाषा और उस के शब्दानुशासन की है।

वैय्याकरण बोलता है—

१—राम रोटी खाता है—राम सोता है

२—राम ने रोटी खाई—लड़की सोई

और अन्य जन भी इसी तरह बोलते हैं। 'राम ने रोटी खाया' कोई नहीं बोलता और न 'राम रोटी खाती है' ही कोई बोलता है। परन्तु एक जगह 'खाता है' क्यो, दूसरी जगह 'खाई' क्यो? यह बात साधारण जन नहीं जानते। इसका भेद शब्दानुशासन बताए गा।

व्याकरण का एक प्रयोजन यह भी है कि अन्यभाषाभाषी इस से उस भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, व्याकरण से भाषा समझ लेते हैं।

कभी-कभी शब्दानुशासन अनुशासन भी करता है, भाषा पर नही, भाषा का गलत प्रयोग करने वालो पर। यदि कोई अंग्रेजी भाषा का 'फुट' शब्द हिन्दी मे बोले, तो ठीक; यहाँ चलता है, सब समझ लेते

हैं। परन्तु 'फुट' को वह 'फीट' कर दे, तो हिन्दी का शब्दानुशासन उसे ठीक कर दे गा, कहे गा—'फीट' हिन्दी मे गलत है; 'फुट' बोलो-लिखो। 'चार फुट उॅचाई है' शुद्ध प्रयोग है। 'चार फीट ऊँचाई' गलत है। कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषा के शब्द ले कर अपने नियमों पर उन्हे चलाती है। हिन्दी का 'धोती' शब्द अंग्रेजी में गया और वहॉ इस का बहुवचन 'धोतीज़' होता है, 'धोतियॉ' नही। इसी तरह हिन्दी मे 'फुट' का बहुवचन 'फुट' ही रहे गा—'चार गज कपड़ा' और 'चार फुट कपड़ा'। यो शब्दानुशासन ने रास्ता बतलाया! इसी तरह वह बताए गा कि 'ऊँचाई' नही, 'उॅचाई' शुद्ध है। तद्धितीय प्रयोग—नीचा-**निचाई**, सीधा-**सिधाई**, छोटा-**छुटाई**, यो प्रथम दीर्घ स्वर ह्रस्व रूप से चलते हैं। इस लिए—'निचाई-उॅचाई' ठीक हैं—'नीचाई-ऊँचाई' गलत! इस तरह भूले-भटके जनो को शब्दानुशासन सही मार्ग भी बतलाता है। यानी भाषा का प्रयोग करने वालो पर शासन है, भाषा पर नहीं। इसी लिए इसे 'शब्दानुशासन' कहते हैं। शब्दो पर शासन भाषा का और अनुशासन व्याकरण का। 'अनु' का अर्थ है—'अनुसार'; या 'पीछे'। भाषा के अनुसार ही व्याकरण शब्दो का प्रयोग-निर्देश करता है।

भाषा का स्वरूप

अपने मन की बात असंदिग्ध रूप से स्पष्टतः दूसरो को बता देने का शब्दमय साधन भाषा है। दूसरे शब्दो मे अर्थसंकेतित शब्द-समूह का नाम ही भाषा है। भाषा की एक पूर्ण इकाई को 'वाक्य' कहते हैं।

राम रोटी खा रहा है

सुशीला पढने जाए गी

ये दो वाक्य हैं, हिन्दी भाषा के। 'राम' तथा 'सुशीला' के बारे में कुछ कहा गया है। यानी किसी के बारे मे कुछ कहना ही 'वाक्य' है और यही 'भाषा' है।

उद्देश्य और विधेय

भाषा या वाक्य के दो प्रमुख अङ्ग हैं—१—उद्देश्य और २—विधेय। जिस के बारे मे कुछ कहा जाता है, उसे 'उद्देश्य' कहते है। ऊपर के दोनो वाक्यो में 'राम' तथा 'सुशीला' 'उद्देश्य' हैं। उन के बारे मे जो कुछ कहा गया है, वह 'विधेय' है। 'खा रहा है' और 'जाए गी' पदो से उन की विशिष्ट क्रियाओ का विधान है। ये ही 'विधेय' हैं। विधेय के साथ दूसरे पद भी हैं। 'रोटी' का खाने से संबन्ध है और 'पढने' का 'जाने' से संबन्ध है। 'चतुर लड़का पढता है' यहाँ 'चतुर' शब्द का संबन्ध उद्देश्य ('लड़का') से है। यानी वाक्य के अन्य पद या तो उद्देश्य से संबद्ध रहते हैं, या विधेय से। सो, वाक्य के 'उद्देश्य' और 'विधेय' का तथा इन से संबन्ध रखने वाले अन्य पदो का वर्णन शब्दानुशान मे होता है।

'पद' और 'प्रातिपदिक'

हम ने ऊपर अर्थ-संकेतित शब्द-समूह को 'भाषा' कहा है। पूरी भापा 'शब्द' है। 'राम जाता है' यह भी शब्द है। 'राम' हम ने कहा और आप ने सुना, तो यह भी शब्द है। 'जाता है' भी शब्द है। 'रा' भी शब्द है और 'ता' भी शब्द है। परन्तु 'रा' तथा 'ता' का कोई संकेतित अर्थ नहीं है; इस लिए इन्हें 'पद' का पद न मिले गा। हाँ, यदि किसी का नाम ही 'रा' रख दिया जाए, तब अवश्य 'रा रोटी खाता है' कहे गे। यानी तब 'रा' 'पद' बन जाए गा। 'जाता

है' की जगह यदि कहीं 'ता' मात्र क्रियापद संकेतित हो जाए, तो 'राम जाता है' की जगह—'राम ता' बोला जा सकेगा और तब 'ता' को भी 'पद' कह सके गे। यानी 'शब्द' ही 'पद' नही; अर्थसंकेतित शब्द को 'पद' कहते हैं। इन पदो से ही 'वाक्य' बनते हैं; जैसे विविध इमारतो से 'नगर' बनता है।

पदो के मूल रूप को 'प्रातिपदिक' कहते हैं। 'लड़के जाते हैं' इस वाक्य के 'लड़के' पद का 'प्रातिपदिक' है—'लड़का'। इसी तरह 'लड़कियॉ जाती हैं' इस वाक्य में 'लड़कियाँ' एक पद है, जिस का प्रातिपदिक है—'लड़की'। 'लड़का जाते हैं' गलत प्रयोग है। बहु-बचन मे 'लड़का' नहीं चलता। जब चलता ही नही, तो फिर 'पद' कैसे ! चले, सो 'पद'। 'लडके जाते हैं' मे 'लड़के' पद है। इस का प्रातिपदिक है—'लड़का'। वाक्य पदो से बनता है।

'पद' या उन के प्रातिपदिक वर्णों या अक्षरो से बनते हैं। 'राम जाता है' मे दो पद हैं—'राम' और 'जाता है'। प्रत्येक पद कई-कई वर्णों से बना है। कोई-कोई पद एक ही वर्ण का भी होता है—'तू आ'। यहॉ 'तू' मे तो दो वर्ण हैं—'त् ऊ'। परन्तु 'आ' क्रियापद एक ही अक्षर का है। एक हो, या अनेक, अक्षरों से पद बनते हैं, इतनी बात।

तो, अब आप नीचे से ऊपर चलें। पहले 'अक्षर' या 'वर्ण' देखे और फिर 'पद' तथा 'वाक्य'। पदो का ही विस्तार अधिक है। साधारण वर्ण-परिचय। पदो का ज्ञान ही व्याकरण मे मुख्य हे। इसी का विस्तार है। 'पद' समझ लिए, तो 'वाक्य' बन ही गया !

इस पुस्तक मे आगे वर्ण, पद तथा वाक्य का क्रमशः पृथक्-पृथक् निरूपण हो गा।

वर्ण-परिचय

'वर्ण' उस मूल शब्द को कहते हैं, जिस के टुकड़े न हो सकें; जो

'क्षर' न हो; क्षार-क्षार न हो सके, जैसे 'क्' 'अ' 'भ्' 'ई' आदि। 'क' में दो वर्ण हैं—'क्' तथा 'अ'। दोनो मिल कर—'क'। इसी तरह 'भी' मे दो वर्ण हैं—'भ्' और 'ई'। दोनो मिल कर—'भी'। 'क' और 'भी' मिलकर—'कभी' पद बन गया। 'कभी इधर आना' एक वाक्य है, जिस मे तीन पद हैं—कभी, इधर, आना। इन तीनो मे कई-कई वर्ण या अक्षर हैं। 'कभी' में चार वर्ण हैं 'इधर' में भी चार हैं—इ, ध्, अ, र्, अ=इधर। 'आना' में तीन वर्ण हैं—आ, न्, आ। 'कब' मे पहला वर्ण व्यंजन है, दूसरा ('अ') स्वर है, तीसरा (ब्) व्यंजन है और चौथा ('अ') स्वर है। इधर मे पहला वर्ण स्वर है—'इ'। दूसरा व्यंजन है—'ध्' और 'अ' इस में स्वर है। 'र' में भी दो वर्ण हैं। व्यंजनो को स्वर का सहारा लेना पड़ता है; स्वर स्वतः चलते हैं। स्वर-रहित व्यंजन के नीचे एक तिरछी लकीर पहचान के लिए कर दी जाती है। 'क' मे स्वर ('अ') लगा है और 'क्' मे नही है। परन्तु अकेले व्यंजन का उच्चारण नही हो सकता। अन्त मे या आदि मे स्वर अवश्य चाहिए। तब व्यंजन का उच्चारण संभव हो गा। 'नहीं' मे 'न' के अन्त मे 'अ' है। केवल 'न्' समझ में तो आता है, पर उच्चारण इस का न हो सके गा। 'श्रीमान्' में 'न्' स्वररहित है; अर्थात् इस के अन्त मे 'अ' नही है, परन्तु आदि मे 'आ' स्वर है। 'श्रीमान्' के 'मा' मे 'आ' स्वर है। वह 'म्' को तो सहारा दे ही रहा है, अन्त्य 'न्' की भी मदद करता है। 'आ' के अनन्तर 'न्' अपना रूप प्रकट कर लेता है। अकेला 'न्' न आए गा। कभी-कभी कई-कई व्यंजनो को एक ही स्वर सहारा देता है—'हस्त'। 'ह' में दो वर्ण हैं; पर अगले अंश ('स्त') मे तीन वर्ण हैं—स्, त्, अ। यानी दो व्यंजन (स् तथा त्) एक स्वर ('अ') के सहारे हैं। इन वर्णों के—स्वरो तथा व्यंजनो के—अब आगे खंड नही हो सकते, इन के टुकड़े नही किए जा सकते, इसी लिए इन्हे 'अक्षर' भी कहते हैं।

वर्णों के दो मुख्य भेद—स्वर और व्यंजन

वर्णों के दो मुख्य भेद हैं—स्वर और व्यंजन। उच्चारण के स्वातंत्र्य-पारतंत्र्य पर यह श्रेणी भेद है। जो स्वतंत्र हो (अपने उच्चारण में), वे स्वर—अ, इ, उ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ। जो स्वरो का सहारा ले कर ही उच्चरित हो सके, वे व्यंजन—क्, ग्, म्, श्, ह् आदि।

हिन्दी में सभी शब्द ('पद' या 'प्रतिपदिक') स्वरान्त हैं, कोई भी व्यंजनान्त नहीं है। इस लिए बहुत सुभीता है। संस्कृत (तद्रूप) शब्द जो हिन्दी में चलते हैं, उन में व्यंजनान्त रूप सामने आते हैं—'क्वचित्' 'साक्षात्' 'प्रत्यक्' आदि।

स्वर वर्ण

स्वर वर्ण ये हैं—

अ, इ, उ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ

इनके उच्चारण में किसी भी अन्य वर्ण की सहायता अपेक्षित नहीं और ये व्यंजनो की भी मदद करते हैं। 'अं' और 'अः' पृथक् स्वर नही हैं। 'अ' पर अनुस्वार देने से 'अं' और विसर्ग लगा देने से 'अः' है। 'अंगूर' 'इंजीनियर' आदि मे स्वर 'सानुस्वार' हैं और 'प्रायः' 'मनः-स्थिति' आदि मे 'य' तथा 'न' के 'अ' सविसर्ग हैं। अनुस्वार-विसर्गों का परिचय आगे दिया जाए गा। विसर्ग केवल संस्कृत (तद्रूप) 'प्रायः' आदि शब्दो मे काम आते हैं; पर अनुस्वार सर्वत्र चलता है। अनुस्वार और विसर्ग भी स्वरो के ही सहारे रहते हैं—स्वरो के अन्त में इन की स्थिति है। स्वर-रहित व्यंजन में अनुस्वार-विसर्ग नही रह सकते।

स्वरों के ह्रस्व-दीर्घ और प्लुत भेद

ऊपर हम ने **अ, इ, उ, ऋ**, ये जो चार स्वर बतलाए हैं, उन्हें 'मूल' स्वर कहते हैं और उन के आगे के (ए, ऐ, ओ, औ) 'संयुक्त

स्वर' कहलाते हैं। 'संयुक्त' का मतलब यह कि कई-कई स्वरो के मेल से ये बने हैं:—

अ+इ='ए' और अ+ए='ऐ'

अ+उ='ओ' और अ+ओ='औ'

यो ये संयुक्त स्वर हैं; परन्तु रूप पृथक् हो जाने से अब इन की पृथक् सत्ता मान ली गई है। अ, इ, उ, ऋ, ये 'मूल स्वर' हैं। 'ऋ' का प्रयोग केवल (तद्रूप) संस्कृत शब्दो मे ही होता है। हिन्दी का एक 'उऋण' शब्द ही ऐसा है, जिस में 'ऋ' देखा जाता है। अन्यत्र-सर्वत्र 'रि' चलता है।

अ, इ. उ, ये तीन मूल स्वर हिन्दी मे सर्वत्र चलते हैं। जब इन्हे कुछ खींच कर बोलते हैं, तो 'दीर्घ' कहलाते हैं और बहुत अधिक खीच कर बोलने से 'प्लुत' कहलाते हैं। 'अमरूद' में 'अ' ह्रस्व है, साधारण है। परन्तु 'आम' में उस की ध्वनि कुछ खींच कर है—'दीर्घ' है। 'इमली' में 'इ' 'ह्रस्व' है और 'ईख' में वह दीर्घ है। 'उल्लू' में 'उ' ह्रस्व है और 'ऊपर' मे दीर्घ है। 'ऋ' का दीर्घ प्रयोग होता ही नही है। संयुक्त स्वर ह्रस्व नही, सब दीर्घ हैं। परन्तु 'अवधी' आदि में 'ए' तथा 'ओ' के ह्रस्व रूप भी चलते हैं।

दीर्घता सूचित करने के लिए लिपि-संकेत स्पष्ट हैं। 'अ' के आगे एक खड़ी पाई और कर देते हैं—'आ'। 'इ' के ऊपर एक कलॅगी लगा देते हैं—'ई'। 'उ' को ऊॅट की तरह कुछ लंबा कर देते हैं—'ऊ'।

भाषा में ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर ही काम आते हैं—'पद'-निर्माण मे। 'प्लुत' रूप स्वर तभी ग्रहण करता है, जब दूर से किसी को जोर से चिल्ला कर बुलाया जाए; या संगीत में अलाप भरा जाए; या जोर से रोया जाए! इस के लिए तीन का अंक (३) उस स्वर के आगे लगा

देते हैं, जिस का प्लुत उच्चारण हो। 'ओ३म्' लिखने का मतलब यह कि 'ओ' को खीच कर बोलो। यानी सयुक्त स्वर भी प्लुत होते हैं।

यो, आ, ई और ऊ कोई पृथक् स्वर नहीं; अ-इ-उ के ही दीर्घ रूप हैं।

स्वरों के अनुनासिक रूप

ऊपर हम ने स्वरो के साधारण रूप दिए हैं। इन सब स्वरो के अनुनासिक रूप भी होते हैं। जैसे 'अ' और 'आ' एक ही वर्ण के ह्रस्व-दीर्घ रूप हैं, उसी तरह 'अ' और 'अँ' साधारण तथा अनुनासिक रूप हैं। यानी 'अ' से 'अँ' कोई पृथक् स्वर नही है। एक ही स्वर के दो रूप हैं—साधारण और अनुनासिक। स्वरो के उच्चारण मे जब नासिका का भी सहयोग रहता है, तब उसे 'अनुनासिक' कहते हैं। 'काटा' में 'का' का 'आ' साधारण स्वर है और 'काँटा' मे वह ('आँ') अनुनासिक है। 'ईख' मे 'ई' साधारण स्वर है और 'ईंट' मे ('ईं') अनुनासिक है। अनुनासिक स्वर ही होता है और अनुस्वार स्वर के सहारे रहता है। यानी अनुनासिकत्व स्वरो का धर्म है, स्वरो मे ओत-प्रोत रहता है। इस की पृथक् सत्ता नही है, जैसे 'मीठे आम' मे 'मीठापन' 'आम' से पृथक् नही है। इसी लिए 'सानुनासिक स्वर' नहीं कहते, 'अनुनासिक स्वर' कहते हैं। 'मधुर आम' कहा जाता है, 'समधुर आम' नही। परन्तु 'अनुस्वार' की पृथक् सत्ता है। 'अंगूर' कहने मे पहले साधारण स्वर ('अ') उच्चरित होता है और उस के अनन्तर अनुस्वार सुनाई देता है। 'अ' के सहारे अनुस्वार है, परन्तु पृथक् स्थिति है। इसी लिए कहा जाए गा कि 'अंगूर' मे प्रथम स्वर सानुस्वार है। परन्तु 'अँगूठी' में बात दूसरी है। यहाँ 'अ' के साथ ही उस का अनुनासिकत्व है। अनुस्वार की तरह इस की श्रुति बाद में नही है।

'सो, 'ऋ' के अतिरिक्त शेष सभी स्वर हिन्दी मे 'साधारण' और 'अनुनासिक' भेद से द्विधा विभक्त हैं। 'साधारण' स्वर ही 'निरनुनासिक' कहलाते हैं, यानी अनुनासिकत्व से रहित। इस की अपेक्षा 'साधारण' और 'अनुनासिक' कहना अधिक सरल है। 'सानुनासिक स्वर' कहना गलती है।

'सानुस्वार' और 'सविसर्ग' स्वर—अंगूर, कंकण, दंगा तथा 'प्रायः' 'दुःस्वप्न' आदि। 'दुः' मे 'उ' सविसर्ग है और 'यः में 'अ' सविसर्ग है। इसी तरह 'सानुस्वार' समझिए। अनुस्वार-विसर्ग का यह प्रकरण नही; स्वरो की चर्चा है। साधारण और अनुनासिक, ये दो भेद स्वरो के बताने थे। प्रासंगिक चर्चा अनुस्वार-विसर्ग की।

व्यंजन वर्ण

व्यंजन वर्णो को तीन श्रेणियो मे विभक्त किया गया है—१—वर्गीय २—अन्तस्थ और ३—ऊष्म। नीचे क्रमशः इन का परिचय लीजिए।

१—वर्गीय व्यंजन

'वर्ग' किसी न किसी आधार को ले कर बनाए जाते हैं। वर्णों को उच्चारण-स्थान की एकता को लेकर पाँच श्रेणियो मे विभक्त किया गया है। 'वर्ण' से यहाँ 'व्यंजन वर्ण' ही समझना चाहिए, क्योकि प्रकरण ही इन वर्णो का है। कोई वर्ण कंठ से बोला जाता है; कोई तालु से; कोई मूर्द्धा आदि से। भीतर से जो वायु प्रवृत्त होती है, प्रकटन के लिए उसे सब से पहले 'कंठ' ही मिलता है, फिर तालु, मूर्द्धा, दन्त, ओष्ठ। इसी क्रम से 'वर्णमाला' में वर्णों की व्यवस्था है।

कंठ से उच्चरित होने वाले वर्ण 'कण्ठ्य' कहलाते हैं:—

क, ख, ग, घ, ङ

इसी तरह—

च, छ, ज, झ, ञ—तालुस्थानीय (तालव्य)
ट, ठ, ड, ढ, ण—मूर्द्धा-स्थानीय (मूर्द्धन्य)
त, थ, द, ध, न—दन्तस्थानीय (दन्त्य)
प, फ, ब, भ, म—ओष्ठस्थानीय (ओष्ठ्य)

इन में से ङ, ञ तथा ण, ये तीन वर्ण केवल संस्कृत (तद्रूप) शब्दो मे ही काम आते हैं और किसी भी पद के आदि मे ये कभी भी नहीं आते। 'क' के वर्ग के ('क' को भी साथ ले कर) सब 'कवर्गीय' कहलाते हैं। इसी तरह 'च' 'छ' आदि 'चवर्गीय' हैं और आगे टवर्गीय, तवर्गीय, पवर्गीय। यो पॉच वर्गो मे ये पच्चीस व्यंजन वर्ण आ गए।

२—अन्तस्थ व्यंजन हैं—

य, र, ल, व

ये चार 'अन्तस्थ' व्यंजन कहलाते हैं। 'अन्तःस्थ' को 'अन्तस्थ' लोग बोलने लगे, विसर्गो का लोप कर के। य, व, र, ल; ये व्यंजन ऐसे हैं, जो स्वर और व्यंजन के मध्य की स्थिति रखते हैं, यद्यपि हैं ये 'व्यंजन' ही। 'मध्य स्थिति' का मतलब यह कि 'य' और 'इ' तथा 'व' और 'उ' मिलते-जुलते हैं, स्थान एक होने के कारण। प्रायः एक दूसरे के स्थान पर आते रहते हैं। ब्रज मे बोलते हैं—'आवत है' और आगे 'बुँदेल खण्ड' मे बोलते हैं—'आउत है'। यानी 'व' को 'उ' हो गया, 'सोसायटी' भी बोलते हैं और 'सोसाइटी' भी। संस्कृत मे भी इ-उ को य-व और य-व को इ-उ होता रहता है। इसी लिए 'य' आदि' को 'अन्तस्थ' < 'अन्तःस्थ' कहते हैं।'

इसी तरह संस्कृत में 'ऋ' को 'र्' होता रहता है—देव+ऋषि= 'देवर्षि'। 'र्' को 'ऋ' भी होता है। 'लृ' एक स्वर और भी पहले

कभी चलता था; पर आज तो (टकसाली संस्कृत में भी) यह दिखता नहीं है। वैदिक संस्कृत में भी 'लृ' कम है। अवश्य ही इसकी 'मूल भाषा' में 'लृ' का चलन रहा हो गा। उसी भाषा का साहित्यिक रूप 'वैदिक संस्कृत' है। सो 'ऋ' तथा 'लृ' मिलते-जुलते स्वर हैं, 'र' तथा 'ल' व्यंजनो से। संस्कृत (तद्रूप) शब्दो मे 'ऋ' को हिन्दी ने भी रखा है। 'लृ' यहाँ है नही !

सो, य, व, र, ल; ये चार 'अन्तस्थ' व्यंजन हुए।

३—ऊष्म व्यंजन

श, ष, स, ह

ये चार 'ऊष्म' व्यंजन कहलाते हैं, क्यो कि ये 'महाप्राण' हैं, चारो ही।

हिन्दी के 'अपने' या 'तद्भव' शब्दो मे 'श'–'ष' नही आते। सर्वत्र 'स' रहता है। 'दश' संस्कृत का है। 'दस' यहाँ चलता है और 'षोडश' का 'सोलह' चलता है। संस्कृत (तद्रूप) शब्दो में हिन्दी 'श' और 'ष' को चलाती है। कुछ विदेशी शब्दो मे भी 'श' चलता है 'सिफारिश' 'शाबाश' आदि।

'अन्तस्थ' और 'ऊष्म' वर्ण वर्गीय नही हैं। प्रत्येक का स्थान पृथक्-पृथक् है। सब के स्थान देखिए:—

क, ख, ग, घ, ङ—ह, अ—कंठ

च, छ, ज, झ, ञ—य, इ—तालु

ट, ठ, ड, ढ, ण—र, ष, ऋ—मूर्द्धा

त, थ, द, ध, न—ल, स—दन्त

प, फ, ब, भ, म—व, उ—ओष्ठ

'व' का स्थान 'दन्त' के साथ-साथ 'ओष्ठ' भी है, यानी यह

व्यंजन 'दन्तोष्ठय' है। इसी तरह वर्गीय पञ्चमाक्षर (ङ, ञ, ण, न, म,) भी द्विस्थानीय हैं। 'ङ' का स्थान 'कंठ और नासिका' है। इसी तरह

१—ञ २—ण ३—न ४—म

१—तालु-नासिका २—मूर्द्धा-नासिका ३—दन्त नासिका ४—ओष्ठ-नासिका।

ये पाँचो 'अनुनासिक व्यंजन' हैं। इन्हे सानुस्वार भी कर सकते हैं, इन्हे क्या, इन के आश्रय स्वर को। व्यंजन तो स्वयं पराश्रित है! वह बेचारा अनुस्वार को सहारा क्या दे गा! ऊपर जो व्यंजनो का निर्देश है, सर्वत्र (सब में) 'अ' उच्चारणार्थ है। 'स्थान' केवल व्यंजनो के बताए हैं, 'अ'—सहितो के नही। उदाहरणार्थ 'च' में केवल व्यजन (च्) का तालु स्थान है। उस मे जो 'अ' है, उस का तो 'कंठ' स्थान है। 'अ'—सहित 'च्' (च) का स्थान तो 'तालु-कंठ' है, बोल कर देख लीजिए। इसी तरह 'प्' का स्थान ओष्ठ है और 'अ' का कंठ। स्वर ('अ'—) सहित व्यंजन ('प्') का स्थान है—'ओष्ठ-कंठ'—'प'। बोल कर देखिए।

इसी तरह 'न' 'म' भी समझिए। इन मे 'अ' उच्चारणार्थ है। केवल 'न्' का 'दन्त' स्थान है, नासिका—सहित। 'अ' को साथ ले कर 'न' कहें, तो इस का स्थान 'दन्त-नासिका-कंठ' समझिए। 'अ' का कंठ-स्थान है न!

इन अनुनासिक वर्णों के आश्रय (स्वर) को सानुस्वार कर दे, तो—'नंगा'—'मंगल' यो उच्चारण मे विशेषता आ जाए गी। 'नगर'—'मगर' में अनुनासिक वर्ण ('न' 'म') मात्र हैं और 'नंगा'—मंगल' मे स्वर सानुस्वार कर दिए गए हैं। अनुनासिकत्व वर्ण (स्वर) में घुली-मिली चीज है और अनुस्वार पृथक् है।

'अल्पप्राण' और 'महाप्राण'

पीछे बतलाए सभी वर्ण दो अन्य श्रेणियो मे रखे जा सकते हैं—१—अल्पप्राण और २—महाप्राण। अल्पशक्ति 'अल्पप्राण' और महाशक्ति—'महाप्राण'।

हम कह आए हैं कि श, ष, स, ह, ये चार वर्ण 'ऊष्म' कहलाते हैं। इन मे 'ऊष्मा' है—गरमाहट है, शक्ति है ज्यादा। हिन्दी मे 'श' तथा 'ष' भी 'स' बन जाते हैं और 'स' को 'ह' होता रहता है—'दस' से 'दहला'—'दहाई' आदि। 'ह' ऐसा 'महाप्राण' है कि सदा अकेला ही रहता है! 'ह' के साथ दूसरा 'ह्' मिल नही सकता! 'पिस्सू' आदि में जैसे दो सकारो का मेल है, उसी तरह दो हकार नही मिल सकते! यह 'ह्' यदि किसी अन्य व्यंजन के साथ बैठ जाता है, तो उसे भी 'महाप्राण' बना देता है। क्+ह='ख' और ग्+ह='घ'। 'क' और 'ख' में तथा 'ग' और 'घ' में कुछ अन्तर है न! 'ख' 'घ' मे जोर आ गया है। 'धड़धड़ाहट' 'भड़भड़ाहट' मे जो जोर है, वह 'रुनझुन' मे भी है क्या? यहाँ तो उलटे मधुरता है। 'न' और 'म' बहुत मीठे व्यंजन हैं। अनुनासिकत्व स्वरो को मीठा कर देता है और अनुस्वार भी मीठा है—'कंकन किंकिनि नू'पुर धुनि सुनि'। कैसे मीठे शब्द हैं? और—

'धमक धड़ाम से गिरा वह भूधर-सा'। यहाँ कैसी धड़धड़ाहट है? 'झ' 'भ' 'ध' 'घ' महाप्राण व्यंजन हैं; 'ह्' यहाँ बैठा हुआ है। 'कब थे वे ऐसे शुचि ज्ञानी' में साधारण वर्ण हैं; न बहुत मधुर, न बहुत कर्कश। मधुर, ओजस्वी तथा साधारण रचना में यथास्थान क्रमशः मधुर, कर्कश और साधारण वर्ण अच्छे लगते हैं। 'अल्पप्राण' वर्णों मे जो अनुनासिक हैं, वे मधुर हैं। शेष सब साधारण हैं। 'महाप्राण' वर्ण श्रवण-कर्कश हैं।

वर्गीय **प्रथम** और **तृतीय** वर्ण 'अल्पप्राण' हैं, साधारण:—

क, च, ट, त, प
ग, ज, ड, द, ब

पंचमाक्षर 'अनुनासिक अल्पप्राण' हैं:—

ङ, ञ, ण, न, म

'अन्तस्थ' व्यंजन भी 'अल्पप्राण' हैं, साधारण। 'ऊष्म' महाप्राण हैं और वर्गीय द्वितीय-चतुर्थ भी महाप्राण हैं—

ख, छ, ठ, थ, फ
घ, झ, ढ, ध, भ

श, ष, श, ह 'ऊष्म' महाप्राण हैं ही। 'अन्तस्थ' वर्ण (य, व, र, ल) 'क च'—'ग ज' आदि के साथ हैं—'अल्पप्राण'। अनुनासिक वर्ण तो अल्पप्राण हैं ही। उन की मधुरता का और महाप्राणता का मेल क्या!

इस तरह यह वर्ण-परिचय हुआ। वर्णों के दो भेद-१—स्वर और २—व्यंजन। स्वर कुछ 'मूल' और कुछ 'संयुक्त'। सभी स्वर साधारण और अनुनासिक भेदो से दो तरह के।

व्यंजनो के तीन भेद—१—वर्गीय, २—अन्तस्थ और ३—ऊष्म। फिर 'अल्पप्राण' और 'महाप्राण' रूप से दो श्रेणियाँ।

'अनुस्वार' और 'विसर्ग'

अब ये दो ध्वनियाँ और रही बताने को—अनुस्वार और विसर्ग। स्वरो का उच्चारण स्वतंत्र होता है—अ, इ, उ आदि। व्यंजन स्वर के आदि मे रहते हैं—क्+अ='क'। क्+आ='का'। क्+इ='कि'। क्+ई='की' आदि। परन्तु अनुस्वार और विसर्ग की स्थिति भिन्न है! ये स्वतंत्र रूप से उच्चरित हो नही सकते; इस लिए स्वर नहीं और

स्वरो के आदि में न रह कर अन्त मे सदा रहते हैं, इस लिए व्यंजन नहीं ! न इन का स्वरो से योग-मेल और न व्यंजनो से ही ! इस लिए इन का नाम 'अयोगवाह' धर लिया गया। 'विसर्ग' संस्कृत शब्दों मे ही आते हैं—'अन्तःकरण' आदि। अनुस्वार का हिन्दी में खूब प्रयोग होता है। ङ, ञ, ण, संस्कृत (तद्रूप) शब्दो में ही चलते हैं और ठेठ हिन्दी या अन्यतः-गृहीत शब्दो में अनुस्वार ही चलता है—

नगा, लफंगा, जंजीर, सुपरिंटेडेट
टंडन, डंडा, कंडा, झंडा आदि।

इन की जगह ङ, ञ, ण देना गलती है; क्योकि ये तीनो शब्द संस्कृत मे ही चलते हैं, अन्य किसी भी साहित्यिक भाषा मे नही। संस्कृत शब्द हिन्दी-पद्धति पर (तद्भव)—

चंचल, कंकण, **अंडज** ठीक हैं। 'सूर्य' का रूप 'सूरज' तद्भव चलता है; पर 'सूर्य' भी चलता है। इसी तरह कोई 'चंचल' आदि न लिख कर 'चञ्चल' जैसे तद्रूप प्रयोग करे, तो कर सकता है—

चञ्चल, कङ्कण, अण्डज आदि। परन्तु 'भिखमङ्गा' 'कण्डा' 'जञ्जीर' आदि लिखना गलत है।

'न' तथा 'म' वर्ण हिन्दी मे (तथा अन्यान्य भाषाओ मे भी) गृहीत हैं। ङ, ञ, और ण से इन की भिन्न स्थिति है। इस लिए जहाँ न्-म् की स्पष्ट श्रुति हो, वहाँ इन का प्रयोग करना चाहिए—दन्त, सन्त, हिन्दी, पम्प, कम्पन आदि। ऐसी जगह अनुस्वार देना ठीक नही। जब न्-म् हिन्दी मे हैं, तब यथास्थान प्रयोग होना ही चाहिए। रजाई अपने पास है, तो जाडे मे ओढे गे ही ! जाड़े मे भी मलमल की चादर ओढकर सोना किस काम का, जब कि घर मे रजाई है ! जो चीज नही है, उस की बात दूसरी हैं। उस की जगह किसी दूसरी चीज से काम लेना हो गा; लिया ही जाता है।

विसर्गों का भी गलत प्रयोग न करना चाहिए। हिन्दी शब्द 'छह' को 'छः' (विसर्गान्त) लिखना गलती है। इसी तरह 'ज्यादा' 'तमन्ना' आदि विदेशी शब्दो के मूल रूपों का निर्देश कही करना हो, तो 'ज्यादह' 'तमन्नह' आदि लिखना चाहिए, न कि 'ज्यादः' 'तमन्नः' आदि। 'बेहूदा' का मूल शब्द 'बेहूदह' बतलाना चाहिए, 'बेहूदः' नही। यानी विसर्गों का प्रयोग केवल संस्कृत शब्दो में ही होता है, अन्यत्र नही। संस्कृत में विसर्गों के बिना काम चल ही नही सकता! अन्यत्र 'ह' चलता है। फारसी-वर्णमाला में 'हे' और रोमन मे 'एच' (H) नाम हैं, 'ह' वर्ण के। नाम 'हे' और 'एच' हैं; उच्चारण 'ह' है।

स्वरो के 'मात्रा'—रूप

स्वरो के लिपि-रूप हिन्दी-संस्कृत मे 'अ' 'इ' आदि हैं, पीछे कहा गया। 'अ' जैसा रूप भी 'अ' की जगह चलता है। परन्तु जब किसी व्यंजन वर्ण को सहारा देने के लिए स्वर आते हैं, तब अपने निज रूप से नही, 'मात्रा'—रूप से आते हैं। स्वरों के प्रतिनिधि-रूपों को ही यहाँ 'मात्रा' कहते हैं। जैसे 'काली' मे दो स्वरो की मात्राएँ हैं। क्+आ= 'का' है। यानी 'क्' में 'आ' की मात्रा लगी है और 'ली' में ल्+ई= 'ली' विन्यास है। ल् में 'ई' की मात्रा (ी) लग कर 'ली'। 'अ' तो उच्चारणार्थ सर्वत्र रहता ही है; इस लिए इस की पृथक् 'मात्रा'— कल्पना नही है। दीर्घ 'आ' की मात्रा है—'ा'। 'काम' में 'क्' 'आ' की मात्रा (ा) के साथ 'का' है।

मात्रा-रूपो में स्वर इस तरह हैं—

आ—ा, इ—ि, ई—ी, उ—ु, ऊ—ू, ए—े, ऐ—ै, ओ—ो, औ—ौ।

व्यंजन मे लग कर—का, कि, की, के, कै, को, कौ

संस्कृत शब्दो में 'ऋ' और उस की मात्रा आती है। 'ऋण' में स्वर अपने रूप से और 'पितृ-ऋण' मे 'त्' में 'ऋ' की मात्रा लगी है।

व्यंजन को सहारा देने के लिए स्वर अपने असली रूप में नही आता। 'को' को 'क् ओ' नही लिख सकते। 'मात्रा'—कल्पना से बडी सुविधा है। 'क् इ' 'क् ई' जैसे रूप यदि चलते, तो लिखने में दूना समय लगता। 'कि' और 'की' लिखने में कितनी लघुता है ?

स्वर-मात्राएँ व्यंजन के आदि मे भी स्वतंत्र रूप से नही चलतीं। 'इक्' को 'ि क्' नहीं लिख सकते। व्यंजन के अन्त मे ही इन का प्रयोग होता है। प्रत्यय आदि के स्वर भी मात्रा-रूप मे-ही आते हैं, यदि व्यंजन पूर्व में हो—

लताएँ, माताओं से

यहाँ 'एँ' प्रत्यय है और 'ओ' बहुत्वसूचक विकरण है, स्वरो से परे। अकारान्त शब्दो के अन्त्य 'अ' का लोप हो जाता है, जब 'एँ' या 'ओ' सामने हो और तब व्यंजन 'एँ' 'ओ' से जा मिलता है। ऐसी स्थिति मे प्रत्यय या विकरण के स्वर 'मात्रा'—रूप ग्रहण कर लेते हैं—

बहन्+एँ=बहनें। बहन्+ओ को=बहनो को।

परन्तु विभिन्न पदो मे यदि व्यंजन और स्वर हो, तो अलग अलग रहते हैं—

श्रीमान् ईश्वरचन्द्र

यहाॅ 'न्' 'ई' में न जा मिले गा—'श्रीमानीश्वरचन्द्र' न हो गा। संस्कृत मे 'श्रीमानीश्वरचन्द्रः' जरूर होता है।

मात्राओ की स्थिति देखने से स्पष्ट है कि नागरी लिपि में एक—

कलात्मक स्थिति है

ह्रस्व स्वर की (लघु) मात्राएँ या तो व्यंजन के बाईं ओर स्थित हैं (जैसे 'कि') और या फिर बाईं ओर को उन का मोड़ है—'कु'। दीर्घ मात्राएँ 'गुरु' हैं और इस लिए वे या तो दाहिनी ओर स्थित हैं; या दाहिनी ओर को उनका मोड है—'की, कू'। वाम और दक्षिण अङ्गो में जितना अन्तर होता है, उतना ही ह्रस्व-दीर्घ स्वरो मे समझिए ! बड़ी सुन्दर कल्पना है। और, बाईं ओर मात्रा रहने पर भी उच्चारण व्यंजन के अनन्तर ही सदा होता है। कारण, 'मात्रा' रूप से कभी स्वर का स्वतंत्र प्रयोग होता ही नही है। 'कि' और 'इक्' अलग-अलग हैं। कही कोई न भ्रम, न सन्देह। पूरी वैज्ञानिक और कलात्मक पद्धति है।

दूसरा अध्याय

'नाम' और 'सर्वनाम'

किसी के बारे में संकेतित शब्दो द्वारा कुछ कहना ही भाषा है और वही 'वाक्य' है—

राम पुस्तक पढता है
सीता गणित पढे गी
मनुष्य का पेट कभी भरता नही !
सन्तोष सब से बड़ा सुख है

ऊपर चार वाक्य दिए हैं, जिन में 'राम' 'सीता' 'मनुष्य' तथा 'सन्तोष' के बारे में कुछ कहा गया है। यानी ये चारो 'उद्देश्य' हैं और इन के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह 'विधेय' है। सबसे पहले 'उद्देश्य' हैं।

जब किसी के बारे में कुछ कहा जाए गा, तो उसका नाम लेना पड़े गा। न हो, तो रखना पडे गा। 'राम' और 'सीता' एक-एक व्यक्ति के नाम हैं। 'मनुष्य' एक प्रकार के अनन्त प्राणियो का नाम है। 'सन्तोष' एक तरह की मनोवृत्ति का नाम है। यदि यो ये 'नाम' न हों, तो भाषा ही न बने।

'नाम' का ही दूसरा नाम व्याकरण में 'संज्ञा' भी है।

संसार के सभी मूर्त-अमूर्त पदार्थों के और प्राणियो के 'नाम' रखे गए हैं। जो चीजें नई-नई सामने आती हैं, उनके भी 'नाम' रख लिए जाते हैं।

ये 'नाम' या संज्ञाएँ कई श्रेणियो में स्थित हैं। किसी एक ही व्यक्ति या पदार्थ का बोध जिस से होता है, उसे 'व्यक्तिवाचक' नाम कहते हैं, जैसे—राम, सीता, कल्लू, हमीदा आदि। जिस शब्द से सामान्यतः किसी पूरी जाति का बोध होता है, उसे 'जातिवाचक नाम' कहते हैं; जैसे 'मनुष्य' 'पशु' 'पक्षी' आदि। जिस शब्द से गुण या क्रिया का बोध होता है, उसे 'भाववाचक नाम' कहते हैं; जैसे 'पाण्डित्य' 'मूर्खता' 'पढना' 'लिखना' 'उठक' 'बैठक' आदि।

तो, ये तीन प्रकार के 'नाम' हुए। इन्हे ही 'व्यक्तिवाचक संज्ञा' 'जातिवाचक संज्ञा' और 'भाववाचक संज्ञा' कहते हैं।

सर्वनाम

कुछ शब्द भाषा में ऐसे होते हैं, जिन का प्रयोग सभी लोग सब के लिए करते हैं। इन्हे 'सर्वनाम' कहते हैं। मै अपने लिए 'मै' का प्रयोग करता हूॅ, तो 'मै' से मेरा बोध हुआ। यानी यहॉ 'मै' मेरा नाम ही एक तरह से समझ लीजिए। आप भी अपने लिए 'मैं' का प्रयोग करते हैं और तब 'मै' से आप का बोध होता है। इसी तरह राम, सीता, कल्लू, मुल्लू आदि सभी लोग अपने लिए 'मै' का प्रयोग करते हैं। तो, कहना चाहिए कि 'मै' सर्वनाम है। इसी तरह 'तू' 'यह' 'वह' आदि 'सर्वनाम' हैं। सर्वनाम किसी 'नाम' की जगह आते हैं, नाम का प्रतिनिधित्व करते हैं। जो जिस का प्रतिनिधि होता है, वह उस का सब काम करता है। तद्रूप समझा जाता है। इसी लिए 'मै' आदि भी एक तरह के 'नाम' हैं, यानी 'सर्वनाम'।

'सर्वनाम' त्रिधा विभक्त हैं—'उत्तमपुरुष' 'मध्यमपुरुष' 'अन्यपुरुष'।

क्रम से परिचय लीजिए।

अपने लिए प्रयुक्त होने वाले 'सर्वनाम' को 'उत्तमपुरुष' कहते हैं। 'मै' और 'हम' 'उत्तमपुरुष' सर्वनाम हैं। एकवचन में 'मै' और बहुवचन में 'हम' आता है। 'मै पढ़ता हूँ' 'हम पढ़ते हैं'।

जिस से बात कर रहे हो, उस के लिए प्रयुक्त होने वाले सर्वनाम को 'मध्यमपुरुष' कहते हैं। 'तू' और 'तुम' मध्यमपुरुष 'सर्वनाम' हैं। 'तू' एक वचन में और 'तुम' बहुवचन में आता है।

'यह' और 'वह' 'अन्यपुरुष' सर्वनाम हैं। 'यह' समीप के लिए और 'वह' दूर के लिए आता है—'यह जा रहा है'—'वह गया'। इन के बहुवचन रूप हैं—'ये' और 'वे'। 'ये जा रहे हैं'—'वे गए'।

इन के अतिरिक्त दो सर्वनाम और हैं—'कौन' और 'कोई'। 'कौन' प्रश्न में आता है—'कौन आ रहा है ?' 'कोई' का प्रयोग (सामान्य ज्ञान होने पर) जब विशेष कोई ज्ञान न हो, तब होता है—'सामने कोई आ रहा है' 'कोई रो रहा है'। इतना पता है कि कोई मनुष्य है; पर विशेष जानकारी नहीं।

ये सभी सर्वनाम पुरुषवर्ग तथा स्त्रीवर्ग में एक-रूप रहते हैं। 'राम' और 'सीता' दोनो अपने को 'मै' या 'हम' कहें गे; दोनो के लिए 'तू' या 'तुम' का प्रयोग होगा, दोनो के ही लिए 'यह' 'ये' तथा 'वह' 'वे' शब्द दिए जाएँ गे। स्त्रीवर्ग और पुरुषवर्ग में कोई अन्तर नही—कोई रूप-भेद नही। 'सर्वनाम' ही जो ठहरे !

'मै' 'हम' उत्तमपुरुष क्यो ?

'मैं' और 'हम' को 'उत्तम पुरुष' क्यो कहते है ? 'मैं' एकवचन है और 'हम' बहुवचन है। 'एकवचन' से एक ही का बोध होता है, बहुवचन से बहुतो का।

जो सब को ले कर चले, वही तो 'उत्तम पुरुष' हो गा न ? 'हम लोग कल तमाशा देखेगे' कहने से सब का ग्रहण हो जाता है, इसी लिए यह 'उत्तम पुरुष' है।

'तुम लोग कल तमाशा देखो गे' कहने से 'हम' छूट जाता है। यानी जो कह रहा है कि 'तुम लोग कल तमाशा देखो गे' वह स्वयं न देखे गा। स्पष्ट है कि 'तुम' से सब का ग्रहण नहीं हुआ; एक पुरुष छूट गया। परन्तु अन्य सब का ग्रहण हो गया।

'वे लोग कल मेला देखे गे' कहने से 'मध्यम पुरुष' भी छूट गया! यानी जिस से बात की जा रही है, उस का ग्राहण 'वे' सर्वनाम से नही हुआ! यहाॅ 'तुम' भी छूट गया! इस लिए यह अन्यपुरुष 'सर्वनाम'; जहाॅ न 'उत्तमपुरुष' का ग्रहण, न 'मध्यमपुरुष' का ही! 'मध्यम पुरुष' से अन्य-ग्रहण हो जाता है—'तुम लोग जाओ गे'। यहाॅ 'मै'—'हम' छोड़, शेष सब का ग्रहण है। इसी लिए 'तुम' 'मध्यमपुरुष'। 'हम लोग तमाशा देखे गे' कहने से 'तुम' और 'वे' तथा 'ये' आदि सभी आ जाते हैं। इसी लिए 'हम' 'उत्तमपुरुष'। सब को ले कर चले, वह उत्तमपुरुष, कुछ को छोड़ कर शेष सब को ले कर चले, वह 'मध्यमपुरुष' और इस से भी जो कम दर्जे पर रह जाए, वह 'अन्य पुरुष'।

'अन्यपुरुष' सर्वनाम पाॅच हैं—यह, वह, कौन, कोई और 'जो'। 'हम' का एकवचन 'मै' और 'तुम' का एकवचन 'मै'। एकवचन-रूपो को अलग गिन ले, तो कुल **नौ** सर्वनाम हुए—मै—हम, तू—तुम, यह—ये, वह—वे, कौन, कोई और 'जो'।

आप, क्या, कुछ आदि 'सर्वनाम' नहीं हैं। विशेष जानकारी के लिए बड़ा शब्दानुशान देखना हो गा।

यहाॅ इतना संक्षेप से समझिए कि हिन्दी मे ये नौ शब्द 'सर्वनाम' हैं।

इन्ही से तद्धितीय अव्यय बनते हैं। 'उत्तमपुरुष' और 'मध्यम पुरुष' सर्वनामो से न संस्कृत में तद्धितीय अव्यय बनते हैं, न हिन्दी मे ही। शेष सभी सर्वनामो से अव्यय बनते हैं—यह—यहाॅ, वह—

वहाँ, जो—जहाँ, कौन—कहाँ, कोई—कहीं। 'क्या' तथा 'कुछ' से ऐसे अव्यय नहीं बनते; क्योंकि ये 'सर्वनाम' नहीं हैं। 'क्या' अव्यय है और 'कुछ' विशेषण। एक 'कुछ' अव्यय भी है। 'क्या' अव्यय है, जो विशेषण-रूप से भी चलता है। हिन्दी में अव्ययों के आगे 'से' 'पर' जैसी एकाध विभक्तियाँ आती हैं—'जब से' 'सदा से' 'क्या से क्या' आदि। अव्यय-प्रकरण में यह सब बतलाया जाए गा। यहाँ इतना समझिए कि 'क्या' तथा 'कुछ' अव्यय नहीं हैं। 'कुछ' विशेषण है, जिस का प्रयोग विशेष्य के बिना भी होता है, जैसे अन्य विशेषणों का—'कुछ ने ऐसा भी कहा है—'बुद्धिमानों ने ठीक कहा है'। 'सो' सर्वनाम अवधी-व्रजभाषा आदि का है और राष्ट्रभाषा में भी क्वचित् चलता है। इसे भी ले कर दस 'सर्वनाम' हुए। दस भी तब, जब एकवचन (तू—तुम आदि) को अलग-अलग गिनें।

———

तीसरा अध्याय

संज्ञाओं के 'वर्ग' और 'वचन'

संस्कृत में सब संज्ञाएँ तीन वर्गों में रखी गई हैं। 'पुरुष' को संस्कृत में 'पुमान्' भी कहते हैं, जिस का 'प्रातिपदिक' है 'पुम्'। वहाँ कुछ संज्ञाएँ 'पुंवर्ग' में रखी गई हैं, कुछ 'स्त्री-वर्ग' में और जो इन दोनो वर्गों से अलग दिखाई दी, उन का एक तीसरा वर्ग बना दिया गया—'क्लीब वर्ग'। 'क्लीब' न स्त्री, न पुमान्! हिन्दी ने तीसरा वर्ग रखा नही। यहाँ सब संज्ञाएँ दो ही वर्गों में हैं—'पुंवर्ग' और 'स्त्रीवर्ग'। परन्तु वर्गीकरण में आधार तथा पद्धति हिन्दी ने संस्कृत की ही रखी है। संस्कृत और हिन्दी में 'अर्थ' को देख कर संज्ञाओ के पुंवर्ग और स्त्रीवर्ग भेद नही हैं। अर्थगत पुंस्त्व-स्त्रीत्व तो साधारण चीज है। सब जानते-देखते हैं कि यह 'नर' है, या 'मादा' है। व्याकरण मे शब्दो पर विचार होता है। यहाँ यह देखा जाए गा कि शब्द की बनावट कैसी है। 'लड़का' पुंवर्गीय प्राणी है और 'लड़की' स्त्रीवर्गीय है। अब आगे इसी बनावट पर शब्दो के वर्ग होगे। 'लड़का' एक शब्द है। इस की तरह जिन शब्दो की बनावट है, वे सब पुंवर्गीय; यानी 'लड़का' जैसा रूप रखने के कारण उसी के वर्ग के। झगड़ा, मकड़ा, लकड़ा, टंटा, कंडा, आदि पुंवर्गीय शब्द हैं।

'लड़की' स्त्रीवर्गीय प्राणी का वाचक है। इस 'लड़की' शब्द की बनावट जैसी है, वैसी बनावट जिन शब्दो की हो, वे सब शब्द हिन्दी मे 'स्त्रीवर्गीय' कहलाते हैं:—

कड़ाही, सुराही, बुहारी, मनाही, दरी; आदि। बस, ये दो वर्ग हैं संज्ञाओं के। संस्कृत के तद्रूप शब्द जो हिन्दी में—

जल, वन, गृह, भवन, काष्ठ, पत्र, फल आदि चलते हैं, वे सब 'पुंवर्ग' मे हैं। 'जल अच्छा है' 'पर्वत बड़ा है'।

संस्कृत के स्त्रीवर्गीय रमा, लता, शिला, माला, शाला, आदि शब्द यहाँ भी स्त्रीवर्ग में ही चलते हैं।

और, नदी, लक्ष्मी, माधवी, पिप्पली, देवी, आदि भी स्त्रीवर्ग में ही।

'रमा आती है' और 'लता खड़ी है'। संस्कृत 'रमा' स्त्रीवर्गीय प्राणी का वाचक शब्द है। उस की तरह जिन की बनावट है, वे 'लता' 'शिला' आदि सभी शब्द स्त्रीवर्गीय; संस्कृत मे भी और हिन्दी में भी।

'देवी' भी स्त्रीवर्गीय शब्द है। इस की तरह जिन शब्दो की बनावट है, वे सब भी स्त्रीवर्गीय—'नदी' पिप्पली' आदि।

'राम' पुंवर्गीय है और इस आकार-प्रकार के 'पर्वत' 'मार्ग' 'नद' आदि सब इसी वर्ग के।

हिन्दी मे 'आ' अपना पुंप्रत्यय है और 'ई' स्त्रीप्रत्यय। परन्तु संस्कृत तद्रूप शब्दो में इन प्रत्ययो का प्रयोग नहीं होता। 'लड़का' पुंवर्गीय शब्द है, 'आ' पुंप्रत्यय स्पष्ट है, परन्तु संस्कृत शब्द 'बालक' में हिन्दी का यह 'आ' प्रत्यय नही है, तो भी (संस्कृत के अनुसार) यह यहाँ भी पुंवर्गीय शब्द है। 'बालक' की तरह 'पर्वत' 'नद' आदि भी पुंवर्गीय। संस्कृत में 'जल' 'धन' 'वन' आदि शब्द तीसरे वर्ग में रखे गए हैं और ठीक रखे गए हैं। 'पर्वत' 'जल' 'वृक्ष' और 'फल' आप को यहाँ हिन्दी मे एक से दिखाई देते हैं और इसी लिए ये सब एक वर्ग मे यहाँ हैं—'पुंवर्ग'। जैसा 'राम', वैसा ही 'नद' और वैसा ही 'वन'। सब की बनावट एक-सी है। परन्तु संस्कृत मे पद—

रूप भिन्न हो जाते हैं। पुंवर्गीय शब्द 'रामः' होता है। 'पर्वतः' 'मार्गः' आदि भी इसी तरह चलते हैं, इस लिए ये सब पुंवर्गीय। इस के विपरीत—'जल' आदि प्रातिपदिको के 'पद' कुछ मधुरता लाते हैं, अपने रूपो मे मीठी ध्वनि पैदा कर लेते हैं। जलम्, वनम्, फलम् जैसे 'पद' चलते हैं। तो 'वृक्षः' से 'फलम्' में अन्तर पड गया न ? इसी लिए वहाँ वर्ग-भेद। ये 'जलम्' आदि 'नपुंसक-वर्ग' मे (संस्कृत मे) रखे गए हैं।

हिन्दी ने विसर्ग छाँट दिए। यहाँ 'रामः' नहीं, 'राम' चलता है। इसी तरह 'वृक्ष' आदि। हिन्दी ने नपुंसक-चिह्न ('म्') भी उड़ा दिया—ढोलक-मँजीरे छीन कर फेंक दिए। तब ('जलम्' का) 'जल' ही रह गया। 'फलम्' का 'फल' रह गया। ऐसी स्थिति मे जैसे 'वृक्ष' पुंवर्गीय, उसी तरह 'फल' पुंवर्गीय। स्पष्ट मार्ग है। 'बकरी' 'घोड़ी' आदि स्त्रीवर्गीय शब्द हैं और 'भैंस' जैसे शब्द 'अर्थ' को देख कर स्त्रीवर्ग में हैं। 'भैंस' एक 'मादा' पशु का नाम है; इस लिए स्त्रीवर्गीय। इसी तरह अन्यत्र समझिए।

सर्वनामो के वर्गीय रूप

सर्वनामो के वर्गीय रूप-भेद नही होते। तू-तुम, मैं-हम, यह-ये, वह-वे, कौन, कोई, जो, ये शब्द पुंस्त्री-वर्गों मे रूप-भेद नही करते; एक-से रहते हैं। 'राम, तू जा' और 'रमा, तू जा'। 'राम' के लिए भी 'तू' और 'रमा' के लिए भी 'तू'। परन्तु 'राम' के लिए जब 'तू' आए गा, तो वह पुंवर्गीय समझा जाए गा और 'रमा' के लिए आए गा, तब स्त्रीवर्गीय; भले ही रूप-भेद न हो। 'राम, तू **जाए गा** नही ?' 'रमा, तू **जाए गी** नही ?' यो क्रिया-पद से बात स्पष्ट हो जाती है। विशेषण भी स्थिति स्पष्ट करते हैं—'राम, तू बहुत **अच्छा है**'—'रमा, तू बहुत **अच्छी है**।'

इसी तरह सब सर्वनाम समझिए। '**कौन** जा रहा है ?'—'**कौन**

'जा रही है ?' दोनो जगह 'कौन' है। इसी तरह 'कोई' का समान रूप रहे गा।

संज्ञाओं के 'वचन'

'वचन' से मतलब है—'संख्यावचन'। 'संख्यावचन' को संक्षेप से 'वचन' कह देते हैं। एक कहना—'एकवचन' और बहुतो का कथन—'बहुवचन'। 'वचन' का अर्थ है—'कहना'। यानी संख्या बतलाने के लिए शब्द में जो रूप रहता है, उसे 'वचन' कहते हैं।

लड़का आता है
लड़की पढती है
बहन गाती है

यहॉ कर्ता-कारक 'लड़का' 'लड़की' 'बहन' 'एकवचन' हैं। एकत्व ही सब का कहना अभिप्रेत है। यानी एकत्व कहना हो, तो संज्ञा हिन्दी में ज्यो की त्यो अपने रूप मे रहती है; परन्तु बहुत्व कहना हो, तो प्रायः रूप बदल जाता है:—

लड़के आते हैं
लड़कियॉ पढ़ती हैं
बहने गाती हैं

यहाँ लड़को का, लड़कियो का और बहनो का बहुत्व स्पष्ट है। 'लड़का' के अनुसार 'पढ़ता' और 'लड़के' के अनुसार 'पढ़ते' क्रिया-रूप भी हैं।

हिन्दी के 'आ' पुंप्रत्यय के अनुसार जहॉ संज्ञा की वर्ग-व्यवस्था है, वहीं बहुवचन मे रूप परिवर्तन ('लड़का'-) 'लड़के' होता है; अन्यत्र समान रूप रहते हैं—

बालक जाता है—**बालक** जाते हैं
मार्ग अच्छा है—**मार्ग** अच्छे हैं

'बालक' तथा 'मार्ग' संस्कृत शब्द हैं; इस लिए उभयत्र समान रूप; परन्तु 'जाता है' से स्पष्ट हो जाता है कि इस का कर्ता 'बालक' एक वचन है और 'जाते हैं' का कर्ता बहुवचन। इसी तरह 'मार्ग' शब्द है। 'अच्छा' विशेषण हिन्दी का 'अपना' है। इस में 'आ' पुंप्रत्यय लगा है। इसी लिए बहुवचन मे 'अच्छे' रूप है। 'मार्ग अच्छे हैं' बहुवचन है।

परन्तु स्त्रीवर्गीय कोई संज्ञा अकारान्त है, तो उस के बहुवचन में परिवर्तन हो गा ही, भले ही वह संस्कृत (तद्रूप) शब्द ही क्यो न हो—

बहन जाती है—बहनें जाती हैं
पुस्तक अच्छी है—पुस्तकें अच्छी हैं

'पुस्तक' का बहुवचन 'पुस्तकें'। यह रूप-परिवर्तन वर्ग-भेद बताने के लिए। अन्यथा 'बालक' और 'पुस्तक' का वर्ग-भेद मालूम न होता।

जो शब्द संस्कृत के ही आकारान्त हैं, उनके बहुवचन रूप एकारान्त नही होते, उभयत्र समान रूप रहते हैं :—

'राजा अच्छा है'—**'राजा** सब अच्छे नहीं'। 'अच्छे' विशेषण बहुवचन में एकारान्त है, विशेष्य ('राजा') ज्यों का त्यो है। इसी तरह:—

'दुरात्मा वह गया'—**'दुरात्मा** सब गए'

दोनो जगह 'दुरात्मा' एक-रूप है। 'गया'—'गए' क्रिया-पद हिन्दी के ('आ' प्रत्यय के साथ) हैं; इस लिए रूप-भेद है। इन्हीं रूप-भेदों से 'दुरात्मा' के वचन-भेद मालूम हो जाते हैं।

परन्तु स्त्रीवर्गीय आकारान्त शब्द संस्कृत का भी रूप बदलता है:—

लता है—**लताएँ** हैं
महिला है—**महिलाएँ** हैं

आगे 'ऍ' विभक्ति से रूप-भेद हो गया है। यदि हिन्दी का "अपना' शब्द आकारान्त हो, तो केवल अन्त्य स्वर अनुनासिक हो जाता है—बहुवचन में—

बिटिया आ जाए—**बिटियाँ** आ जाएँ

बटिया लाओ—**बटियाँ** लाओ

इकारान्त शब्दः—

'रवि उदय हुआ'—'बारहो रवि उदय हुए'। पुंवर्ग में समान रूप हैं। इसी तरह ईकारान्तः—

'धोबी आया'—'**धोबी** आए'

संस्कृत—'संन्यासी आया'—'**संन्यासी** आए'

'विद्यार्थी आया'—'**विद्यार्थी** आए'

समान-रूप हैं। परन्तु स्त्रीवर्गीय शब्दों में भेद हो जाता हैः—

'मेरी वह **निधि** है'—'मेरी वे **निधियाँ** हैं'

'**नदी** सदा बहती है'—'**नदियाँ** सदा बहती हैं'

ये संस्कृत के शब्द हैं। हिन्दी के 'अपने' स्त्रीवर्गीय शब्द भी—

धोती—**धोतियाँ**, रोटी—**रोटियाँ**

बहुवचन में रूप-भेद होता है। संस्कृत उकारान्त पुंवर्गीय शब्द समान-रूप रहते हैं—

'भानु उदय हुआ'—'भानु उदय हुए'

हिन्दी के अपने ऊकारान्त शब्द भी नहीं बदलते, यदि पुंवर्गीय हो—

टापू पड़ गया—टापू पड़ गए

स्त्रीवर्गीय शब्द रूप बदलते हैं—

बधू-**बधुएँ**—बहू-**बहुएँ**

चाहे संस्कृत तद्रूप शब्द हो, चाहे तद्भव हो; या ठेठ 'अपना' शब्द हो, रूप-परिवर्तन यहाँ हो गा, स्त्रीवर्ग में।

आदर में बहुवचन

संख्या में एकवचन-बहुचन तो होता ही है; आदर प्रगट करने के लिए भी (एक का ही) बहुवचन में प्रयोग होता है। एक ही हजारों-लाखो के बराबर, यह भाव प्रकट करने के लिए। परन्तु आदरार्थक बहुवचन में संज्ञा ज्यो को त्यो रहती है—क्रिया से बहुत्व सूचित होता है। संज्ञा के आगे आदरार्थक 'जी' अव्यय भी लगा देते हैं—

राम जी आए—सीता जी आई
बहू जी आई—माता जी आई
बहन जी आई—रानी जी आई

संख्या में बहुवचन हो तो, 'रानियाँ आई' 'कन्याएँ आई' यो रूप-भेद हो गे।

'ओ' विकरण से बहुवचन

'ने' 'से' 'को' आदि विभक्तियाँ सामने हो, तब दोनो वर्गों की सभी संज्ञाओ में रूप-भेद होता है, कोई अपवाद नही—

बालक को—**बालकों** को
लड़के को—**लड़कों** को

'ने' आदि विभक्ति-रहित स्थल में एकवचन 'लड़का' आदि ज्यो का त्यों और बहुवचन में एकारान्त रूप-'लड़के' होता है। परन्तु 'ने' आदि विभक्ति की उपस्थिति में जब प्रकृति ('लड़का' आदि) और प्रत्यय (ने, को, से आदि) के बीच में बहुत्व-सूचनार्थ 'ओ' विकरण आ जाता है, तब प्रकृति के अन्त्य 'अ' या 'आ' का लोप हो जाता है और व्यंजन 'ओ' में जा मिलता है—

लड़को को, बालको को, बहनो को

'इ-ई' को 'इय्' हो जाता है:—

निधि से—**निधियों** से
नदी में—**नदियो** में
धोबी को—**धोबियो** को
साड़ी मे—**साड़ियों** मे

'ऊ' ह्रस्व हो जाता है—

बाबू से—**बाबुओं** से
बहू से—**बहुओ** से
भानु में—**भानुओं** मे
वधू को—**बधुओ** को

परन्तु आदरार्थक बहुवचन में संज्ञा ज्यो की त्यो बहुवचन में रहती है—

भाई जी ने कहा है—**बहू जी** ने कहा है
बहन जी ने कहा है—**सास जी** ने कहा है

ये सब बहुवचन-प्रयोग हैं। यदि संख्या अधिक बतानी हो, तो रूप-भेद हो गा:—

भाइयों ने कहा है—**बहुओं ने** कहा है
बहनो ने कहा है—**सासों ने** कहा है

'ने' आदि विभक्तियो की उपस्थिति मे हिन्दी के 'आ' प्रत्ययान्त पुंवर्गीय शब्द (या इससे प्रभावित किसी विदेशी भाषा के शब्द), एकवचन में एकारान्त हो जाते हैं—

लड़के से, कंधे पर, कन्धे में

बहुवचन मे—

लड़को से, कंधो पर, कन्धो मे

निर्विभक्तिक रूप बहुवचन में एकारान्त ही होता है—**लड़का-लड़के**।

अन्य सब शब्द सविभक्तिक एकवचन में ज्यो के त्यो रहते हैं—

बालक से, बहन से, पुस्तक से, नदी से, बहू से, धोबी से, राजा से, कुम्हार से, आलू से आदि ।

बहुवचन ('ओ' विकरण के साथ):—

बालको से, बहनो से, पुस्तको से, कुम्हारो से, नदियो से, बहुओ से, धोबियो से, आलुओ से आदि ।
बहुत **साफ, स्पष्ट**, और सरल मार्ग है ।

सर्वनामों के बहुवचन

सर्वनामो के बहुवचनो में 'ओ' विकरण नही आता, क्योंकि उन के बहुवचन रूप प्रकृत्या पृथक् हैं । 'हम' बहुवचन है, इस लिए 'ओ' के बिना ही 'हम ने' 'हम से' आदि रूप होते हैं । इसी तरह 'तुम ने' 'तुम से' आदि । 'कुछ' अनिश्चित संख्या-वाचक विशेषण भी प्रकृत्या बहुवचन हैं; इस लिए इस के आगे भी 'ओ' नहीं आता— 'कुछ ने ऐसा भी कहा है' । 'बहुत' के आगे 'ओ' आता है—'बहुतो ने कहा है' । 'बहुत' साधारण बहुत्व प्रकट करता है । 'ओ' से संख्या का और आधिक्य प्रकट होता है । 'कुछ' तो स्वतः संख्या की अल्पता बतलाता है । उस में 'ओ' न लगे गा । खिचड़ी में चीनी नहीं पड़ती ।

'सब' संख्यावाचक विशेषण में भी 'ओ' नहीं लगता । 'ओ' संख्या का आधिक्य प्रकट करता है । जब 'सब' कह दिया गया, तब और आधिक्य क्या ? 'सब ने कहा' चलता है । परन्तु 'सब ने' है बहुवचन । संख्यावाचक 'सब' का एकवचन संभव नहीं ।

'लाला' 'नागा' 'बिरला' आदि

ऐसे आकारान्त पुंवर्गीय शब्द सदा एक-रस रहते हैं, जिन से वर्ग-विशेष का बोध होता है । सो, 'लड़का-लड़के' की तरह 'लाला' 'लाले' रूप नहीं होते ।

'नागा आया'—'नागा आए'

जैसे रूप रहते हैं। विभक्ति परे हो तो भी—

लाला से, नागा से, विरला से, मूँदडा से

ऐसे प्रकृतिस्थ रूप रहे गे; एकारान्त न होगे। 'ओ' विकरण में भी—

'नागाओ ने' 'नागाओ से'

जैसे रूप रहेगे। यानी अन्त्य स्वर का लोप नहीं होता। अन्यत्र 'नंगा'—'नंगे'। नंगे से—नंगो से' यो रूप-भेद होता है।

'दादा' मामा' 'चाचा' आदि

'दादा' आदि शब्दों के भी 'आ' को 'ए' नही होता—

दादा ने, चाचा से, मामा को

यो आकारान्त रूप ही रहते हैं। 'दादा आए' 'चाचा गए' यो प्रायः बहुवचन (आदरार्थक) प्रयोग होता है और आदरार्थक बहुवचन में संज्ञा प्रकृतिस्थ ही रहती है। 'दादी आई हैं' आदरार्थक बहुवचन हैं और 'दादियाँ आई हैं' संख्या का बहुत्व - सूचन है। इसी तरह 'लड़के आए' संख्या का बहुत्व है और 'दादा आए' आदरार्थक बहुवचन है। 'दादी ने कहा' या 'दादी जी ने कहा' में 'दादी' भी आदरार्थक बहुवचन है, 'ओ' विकरण के बिना। संख्या प्रकट करने के ही लिए 'ओ' आता है। संक्षेप यह कि जब आदरार्थक बहुवचन हो, तो कोई भी प्रत्यय या विकरण ऐसा नही आता कि प्रकृति (संज्ञा) के रूप मे हेर-फेर हो जाए। न 'दादा' का 'दादे' और न 'दादी' का 'दादियाँ'। सविभक्तिक बहुवचन भी (आदरार्थक) 'दादो से' नही, 'दादा से'-'दादी से' ही होते हैं।

सो, जब कि 'दादा' 'चाचा' 'मामा' आदि का प्रयोग आदरार्थक बहुवचन में होता है, तो—

'दादा से कहो' और 'दादा जी से कहो'

यहाँ 'दादा' बहुवचन ही है। साधारणतः एकवचन में 'आ' को 'ए' होता है सविभक्तिक प्रयोग मे—

'लड़के से' 'खंभे पर'

सो, 'दादा से' 'मामा से' बहुवचन हो, 'ओ' विकरण के विना; तब 'आ' को 'ए' होने की बात ही नही! 'उस चाचा से क्या, जो काम न आए' यहाँ एकवचन है 'चाचा'। परन्तु तो भी 'आ' को 'ए' नही होता। इस तरह दादा-बाबा आदि हैं। 'मुन्ना' 'बच्चा' आदि पृथक् हैं—'मुन्ने से कह दो'। 'आ' को 'ए' हो गया है।

'दो दिन से' 'चार घंटे से'

परिमाण (नाप-तोल) बतलाने वाले शब्दो मे 'ओ' विकरण प्रायः नहीं लगाते। मिनट, घंटा, दिन, महीना, वर्ष आदि समय का परिमाण ही बतलाते हैं और प्रयोग होते हैं—

'दो दिन से' 'चार घंटे से' 'तीन बरस से' 'चार महीने से' 'ओ' विकरण नही है। इस लिए नही है कि 'दो दिन' समय की एक इकाई मान ली गई है। इसी तरह 'चार घंटा' 'तीन बरस' 'चार महीना' आदि। इसी लिए बहुत्व-सूचक 'ओ' विकरण नही है। परन्तु यदि संख्यावाचक शब्दो को पृथक् विशेषण के रूप मे मान कर समयाधिक्य सूचित करना हो, तब 'ओ' आए गा—'चार महीनो मे तू ने केवल यह पुस्तक समाप्त की है! हद हो गई!'

इसी तरह—

तू **चार सेर** दूध देने को कहता है!

परन्तु **चार सेर से** मेरा काम बनेगा नही!

'चार सेर' तोल की एक इकाई। बहुत्व सूचित करना हो, तब भी 'चार' को पृथक् 'सेर' मात्र का विशेषण मान कर—'चार सेरो से भी

काम न चले गा' ऐसा प्रयोग नहीं होता। बोला जाता है—'चार सेर से भी काम न चले गा'

इसी तरह—'चार गज कपड़ा से'। 'चार गजो से' नहीं, 'चार गज से' चलता है। कारण यह कि मिनट, घंटा, दिन, वर्ष आदि समय के ऐसे परिमाण हैं, जो स्वतंत्र संज्ञा के रूप में आ गए हैं, परन्तु 'सेर' 'गज' आदि विशेषण-रूप ही हैं—'गज भर कपड़ा' 'सेर भर दूध'। परिमाण (तोल-नाप) की गिनती क्या ? परन्तु तौलने के बॉट को जब 'सेर' या 'मन' कहेगे, तब गिनती हो जाएगी और कहा जाएगा—

सेरों दूध, मनों दूध, आदि।

यहॉ 'ओ' तद्धित प्रत्यय है; बहुत्व-सूचनार्थ।

चौथा अध्याय

विभक्ति और कारक आदि

पिछले अध्याय में 'एकवचन-बहुवचन' बतलाते हुए कहा गया कि विभक्ति ('ने' आदि) के बिना 'लड़का' आदि संज्ञाओ के एकवचन रूप ज्यो के त्यो रहते हैं—'**लड़का आया**'। परन्तु 'ने' आदि की उपस्थिति में रूप बदल जाता है—'लड़के से'। यानी निर्विभक्तिक **बहुवचन** में 'लड़के आते हैं' जैसे एकारान्त रूप होते हैं और सविभक्तिक **एकवचन** में एकारान्त—'लड़के से पूछो' यों 'लड़का' का 'लड़के' रूप हो जाता है। बहुवचन में 'ओ' विकरण से—'लड़को से पूछो'।

तो, यह विभक्तियो का अवतरण क्यो हुआ ? प्रश्न हो सकता है। इस अध्याय में इसी का खुलासा हो गा।

राम जाता है
सीता बैठी है
लड़का रोता है

इन वाक्यो में उद्देश्य ('राम' आदि) और विधेय (क्रियाएँ 'जाता है' आदि) निराकाङ्क्ष वाक्य बना देती हैं। यहॉ किसी विभक्ति की जरूरत नहीं। परन्तुः—

राम गोविन्द देखता है
राम गोविन्द अलग हो गया
राम गोविन्द पुस्तक दी

ऐसी जगह क्या मतलब निकले गा ? कौन किसे देखता है; कौन किस से अलग हो गया और किस ने किसे पुस्तक दी; यह स्पष्ट नहीं। बात साफ-साफ कह देना ही भाषा का काम है और वही हो नहीं रहा है ! तब भाषा कैसी ? इसी कारण को, ने, से, आदि विभक्तियो की सृष्टि की गई है। विभक्तियो से संज्ञाएँ कर्ता-कर्म आदि कारको में तथा 'संबन्ध' और 'हेतु' आदि रूपो में विभक्त हो जाती हैं। संज्ञाओ को यो 'कर्ता' आदि में विभक्त करना विभक्तियो का काम है। 'राम कपड़ा देखता है' में विभक्ति की जरूरत नही, क्योकि कोई भ्रम-संदेह नहीं है। कपडे के आँखें नहीं हैं कि वह 'राम' को देखे ! 'राम' ही देखने वाला है। सब स्पष्ट है। परन्तु—

राम गोविन्द देखता है

कुछ नहीं, जब तक विभक्ति न दी जाए। कारण यह कि 'राम' के भी आँखे हैं और 'गोविन्द' के भी हैं। दोनो दोनो को देख सकते हैं। तब 'राम गोविन्द को देखता है' या 'राम को गोविन्द देखता है' यो स्पष्ट करना हो गा। यानी 'कर्म' कारक में 'को' विभक्ति लगानी ही हो गी। परन्तुः—

'कन्या वर खोजती है'

यहाँ 'को' के बिना भी काम चल जाता है; क्योकि 'खोजती है' क्रिया-रूप से स्पष्ट है कि स्त्रीवर्गीय 'कन्या' ही 'कर्ता' है। वही खोजती है।

'राम ने एक शिशु देखा'

यहाँ भी 'कर्म' कारक ('शिशु') के आगे को विभक्ति नही है; यद्यपि आँखे उस के भी हैं। कारण यह कि 'ने' विभक्ति कर्ता-कारक में ही लगती है; अन्यत्र नहीं। तो, जब 'ने' विभक्ति से स्पष्ट है कि

'राम' ही है देखने वाला, तब 'कर्म' स्वतः स्पष्ट है—'शिशु'। स्वतः सब स्पष्ट होने से कोई विभक्ति लगाए बिना भी वाक्य पूरा है।

'राम गोविन्द अलग हो गया' कहने से नहीं समझ में आया कि कौन किस से अलग हो गया। यानी अलग होने का 'कर्ता' कौन है, समझ में नहीं आता। दूसरे में 'से' विभक्ति लगा दे, तो बात साफ हो जाती है—

राम गोविन्द से अलग हो गया
राम से गोविन्द अलग हो गया

विभक्ति-रहित कर्ता है, अलग होने वाला और 'से' विभक्ति 'अपादान' कारक में लगी है, जिस से वह अलग हुआ है। कर्ता, कर्म अपादान आदि कारक अभी आगे स्पष्ट हो जाएँ गे। यहाँ इतना समझिए कि 'को' आदि विभक्तियो का क्या काम है।

'राम गोविन्द पुस्तक दी'

कुछ समझ में नहो आया कि पुस्तक देने वाला कौन है और लेने वाला ('संप्रदान') कौन है! यदि देनेवाले के आगे 'ने' लगा दे, तो मतलब स्पष्ट हो जाए गा—

राम ने गोविन्द को पुस्तक दी
राम को गोविन्द ने पुस्तक दी

अब सब स्पष्ट है।

विश्लिष्ट और संश्लिष्ट विभक्तियाँ

हिन्दी में अधिकाश विभक्तियाँ ऐसी हैं, जो संज्ञा से विश्लिष्ट या विभक्त रूप से प्रयुक्त होती हैं। ऐसी विभक्तियाँ हैं:—

ने, को, से, में—पर, और के

कुछ विभक्तियाँ ऐसी हैं, जो संश्लिष्ट ही रहती हैं; सटा कर ही लिखी जाती हैं प्रकृति से। वे हैं:—

इ, रे, ने

'ने' कर्ता-कारक में लगने वाली विभक्ति विश्लिष्ट है—**'राम ने कहा है'** और संबन्ध-विभक्ति 'ने' संश्लिष्ट है—**'अपने** तो सब कुछ है'।

विश्लिष्ट विभक्तियाँ

राम ने, राम को, राम से, राम में, राम पर, यों प्रकृति से सटाए बिना 'ने' आदि विश्लिष्ट विभक्तियाँ चलती हैं; परन्तु संश्लिष्ट विभक्तियाँ प्रकृति से सट कर ही चलती हैं—

इसे-उसे, इन्हें-उन्हें तेरे-मेरे, अपने

'इ' 'रे' तथा 'ने' विभक्तियाँ प्रकृति से सट कर प्रयुक्त हैं। इन्हें अलग कर के पद-प्रयोग नहीं कर सकते। 'इस को' की तरह 'इस इ' नहीं लिख सकते। इसी तरह 'तेरे' 'अपने' समझिए। 'ते रे' 'अप ने' न लिखें गे।

इन्हें-उन्हें' में भी 'इ' विभक्ति है, जो बहुत्व-द्योतन के लिए अनुनासिक हो गई है-'हैं'-'हैं' क्रियाओ की तरह।

इन्हीं विभक्तियो से विभिन्न कारक तथा संबन्ध आदि प्रकट होते हैं। यदि भाषा में विभक्तियाँ न हो, तो संज्ञाओ को 'कर्ता' आदि के रूपो में समझना-समझाना सम्भव ही न हो! भाषा ही न बने!

कारक तथा संबन्ध आदि

पीछे कई बार कहा गया कि संज्ञाओ को कारक तथा संबन्ध आदि रूपों में विभक्त करना विभक्तियो का काम है। तो, 'कारक' समझ लेने

चाहिए और 'संबन्ध' आदि का रूप भी जान लेना चाहिए। तब आगे की बात अच्छी तरह समझ में आए गी।

'कारक' शब्द भी मूलतः ऐसा ही है, जैसे-'पाठक' (पढ़ने वाला) और 'छेदक' (काटने वाला) आदि। सो, 'कारक' का योगार्थ है—'करनेवाला', यानी 'कर्ता'। परन्तु आगे चल कर 'कारक' शब्द का अर्थ-विकास हुआ है। 'तैल' शब्द का योगार्थ है—तिलो से निकला स्नेह (चिकनई)। परन्तु आगे चल कर 'तैल' शब्द के अर्थ का विस्तार हो गया। 'गौण' प्रयोग होने लगे। तिलो से निकला वह पदार्थ (तैल) चिकना होता है और दीपक में जलाने आदि के काम आता है। इस तरह की चीज अन्यत्र से भी प्राप्त हुई–सरसो से, अलसी से, मूँगफली से और बिनौले आदि से भी। इन सब चीजो से निकले वैसे पदार्थ को 'तैल' और फिर 'तेल' कहने लगे, जो गुण-धर्म (चिकनाहट, द्रवत्व आदि) में समान दिखाई दिए।

इसी तरह 'कारक' शब्द के अर्थ में भी विकास हुआ है। 'कारक' (कर्ता) का क्रिया के साथ संबन्ध होता है। इस (क्रिया के साथ संबन्ध) को 'गुण' मान कर इस शब्द का अन्यत्र भी प्रयोग होने लगा। जिस का भी क्रिया के साथ संबन्ध, वह-'कारक'। परन्तु 'कर्ता' भी अन्वित हो। यानी 'कर्ता' तो 'कारक' है ही; साथ ही अन्य भी 'कारक'; यदि क्रिया के साथ संबन्ध हो।

इस लक्षण से छह कारक हुए—

१ कर्ता, २–कर्म, ३–करण ४–सम्प्रदान ५–अपादान ६–अधिकरण यथाक्रम परिचय—

१—**कर्ता-कारक** : स्पष्ट है। क्रिया का करने वाला 'कर्ता'। क्रिया से मुख्य संबन्ध तो कर्ता का ही है। जो करता है, वही 'कर्ता' कारक। क्रिया में स्वतंत्र 'कर्ता'।

राम सोता है
राम पुस्तक पढता है
सुशीला रोटी बनाती है

सोने की क्रिया 'राम' कर रहा है; इस लिए 'कर्ता' कारक। इसी तरह पढने का कर्ता-कारक भी 'राम' है। रोटी बनाने का काम 'सुशीला' कर रही है, इस लिए यहाँ 'सुसीला' कर्ता-कारक।

२—**कर्म कारक :** जो किया जाता है, उसे हिन्दी में 'काम' कहते हैं। यह 'काम' संस्कृत 'कर्म' का ही तद्भव रूप है।

'जागना' 'बैठना' 'उठना' ये सब क्रियाएँ हैं अकर्मक।

राम जागता है, माधव बैठा है, ऊँट उठा

यहाँ कोई 'कर्म' कारक नहीं है। 'जागना' आदि अकर्मक क्रियाएँ हैं। यह सब क्रिया-प्रकरण में और अधिक स्पष्ट हो जाए गा। परन्तु—

राम बनाता है, गोविन्द बिगाड़ता है, श्याम नोचता है

ये 'बनाना' 'बिगाडना' 'नोचना' क्रियाएँ सकर्मक हैं। जिज्ञासा है कि—

राम क्या बनाता है ? खिलौना ?
गोविन्द क्या बिगाडता है ? बात ?
श्याम क्या नोचता है ? फूस ?

जो चीज बनाई जा रही है, बिगाड़ी जा रही है, नोची जा रही है, वही 'कर्म' है व्याकरण में। राम खिलौना बना रहा है, तो 'खिलौना' कर्म कारक और रोटी बना रहा है, तो 'रोटी' कर्म-कारक।

'कर्म'-कहीं 'निष्पाद्य' होता है कर्ता उसका निष्पादन करता है; जैसे—

राम **खिलौना** बनाता है
सुशीला **कुर्ता** सीती है

यहाँ 'खिलौना' और 'कुर्ता' निष्पाद्य 'कर्म' हैं। इन का निष्पादन हो रहा है।

कहीं कर्म 'विकार्य' होता है—

राम खिलौना बिगाड़ रहा है
गोविन्द पेड़ काट रहा है
सुशीला धोती फाड़ रही है

यहाँ 'खिनौना' 'पेड' और 'धोती' विकार्य 'कर्म' हैं। इन का निष्पादन नही हो रहा है, वरन ये तोडे-काटे जा रहे हैं, फाडे जा रहे हैं।

कहीं 'कर्म' कारक 'प्राप्य' होता है—

मोहन पुस्तक पढ रहा है
सोहन गॉव गया है
सुशीला बच्चे को देखती है

'पुस्तक' का मतलब है उस में लिखी बाते। मोहन उन बातो को प्राप्त कर रहा है—ग्रहण कर रहा है। सोहन गावॅ पहुँच गया। सुशीला बच्चे को नेत्रो से देख रही है। यो पढना, जाना तथा देखना क्रियाएँ हैं और इन के 'प्राप्य' कर्म हैं—पुस्तक, गावॅ और बच्चे। न पुस्तक आदि चीजे बनाई जा रही हैं; न बिगाड़ी जा रही हैं। प्राप्यता शरीर से भी होती है; जैसे 'मोहन गावॅ गया' में 'गावॅ'। इन्द्रियो से भी प्राप्यता होती है—'मै तेरी बात सुनता हूँ'। 'बात' का कानो द्वारा ग्रहण है। कही मन से भी ग्रहण होता है—'मै तेरी बात समझ रहा हूँ'। यहाँ 'बात' मनसा-प्राप्य है। समझना 'मन' या 'बुद्धि' का काम है।

३—**करण कारकः** कर्ता कारक जिस साधन से क्रिया की निष्पत्ति करता है, उसे 'करण' कहते हैं:—

मोहन चाकू से कलम बनाता है
सोहन पेंसिल से ही लिखता है

यहाँ 'चाकू' और 'पेंसिल' करण कारक हैं; क्योंकि उन्हीं से बनाने-लिखने का काम हो रहा है।

४—**संप्रदान कारक :** जिसे कोई चीज दी जाती है, उसे 'सम्प्रदान' कहते हैं:—

मोहन ने मुझे कलम दी थी
मै मोहन को पुस्तक दूँ गा

पहले वाक्य में 'मैं' संप्रदान-कारक में है—'मुझे'। दूसरे वाक्य में 'मोहन' सम्प्रदान कारक में है।

५—**अपादान :** जिस से कोई चीज अलग हो, उसे 'अपादान' कहते हैं:—

लड़का स्कूल से आ गया
पेड़ से पत्ते गिरते हैं

लड़का स्कूल से आ गया, तो 'स्कूल' अपादान-कारक हुआ और पत्ते पेड़ से गिरते हैं, तो 'पेड़' अपादान-कारक। लड़का और पत्ते वहाँ से हटे हैं।

६—**अधिकरण :** आधार को व्याकरण में 'अधिकरण' कहते हैं।

पुस्तक सन्दूक में है
कपड़ा सन्दूक पर है

पुस्तक तथा कपडे के आधार 'सन्दूक'। यदि कह दिया जाए—'पुस्तको पर सन्दूक है' तो 'पुस्तक' अधिकरण है—'पुस्तको पर'। जब भीतर कहना हो, तो 'में' विभक्ति आती है और 'ऊपर' कहना हो, तो 'पर' आती है।

बस, ये छह 'कारक' हैं। इन का प्रत्यक्ष संबन्ध क्रिया से है।

'संबोधन' पृथक् कारक नहीं है। 'राम, इधर आओ' यहाँ जिस का संबोधन है, वही बुलाया जा रहा है। आने के लिए उसे ही आज्ञा दी जा रही है। वही आए गा। सो, यह कर्ता कारक से पृथक् नहीं।

'संबन्ध' भी 'कारक' नही है :—

राम के लड़का हुआ
राम का लड़का पढता है

'लड़का हुआ' यहाँ 'हुआ' का अर्थ है—'पैदा हुआ'। लड़का पैदा हुआ है, राम नही पैदा हुआ। 'राम' का तो पिता-रूप से संबन्ध भर है। दूसरे वाक्य में 'लड़का' पढ़ता' है। पढ़ने से 'राम' का कोई संबन्ध नही। दोनों जगह 'लड़का' कर्ता-कारक है। उस का संबन्ध 'राम' से है।

राम का घोड़ा घास चरता है

यहाँ 'घोड़ा' कर्ता-कारक है। वह चर रहा है। 'घास' कर्म-कारक है। वही चरी जा रही है। परन्तु 'राम' का 'चरने' से कोई संबंध नहीं; इस लिए वह 'कारक' नही है।

मोहन के चाकू से मैं कलम बनाता हूँ

'मैं' कर्ता, कलम कर्म, चाकू करण। इन तीनो का संबन्ध 'बनाने' से है। कोई बना रहा है, कोई बनाई जा रही है, किसी से बनाई जा रही है। परन्तु 'मोहन' का संबन्ध उस क्रिया (बनाने) से कतई नही। इस का तो करण (चाकू) से संबन्ध है। वह चाकू मोहन का है, जिस से कलम बनाई जा रही है।

सो, स्पष्ट हुआ कि कारक छह हैं। संबोधन पृथक् कारक नहीं है। और, जिस का क्रिया से कोई संबन्ध नहीं, विभिन्न कारको से ही संबन्ध है, वह (संबन्ध, या 'भेदक') भी 'कारक' नहीं हैं।

विभक्तियों की प्रयोग-व्यवस्था

विभक्तियो का प्रयोग हिन्दी में अत्यन्त सुव्यवस्थित-नियमित है। गिनती की विभक्तियाँ हैं; परन्तु भाषा में न कहीं सन्देह रहने पाता है, न भ्रम की गुंजाइश।

'ने' विभक्ति

हिन्दी की 'ने' कारक-विभक्ति **केवल** कर्ता-कारक में लगती है, अन्य किसी भी कारक में कही भी नहीं। और, कर्ता-कारक में भी तब, जब क्रिया भूतकाल की हो और सकर्मक हो—

राम ने रोटी खाई
मा ने बच्चे को दूध पिलाया
हम ने तुम्हें बुलाया था
तू ने सब बाते साफ कर दीं

ऊपर सब क्रियाएँ सकर्मक हैं, भूत काल की। कर्ता-कारको में 'ने' विभक्ति लगी है। अकर्मक क्रियाओ के कर्ता (भूतकाल में भी) 'ने' विभक्ति के बिना आएँ गे—

लडका सोया है—लड़की सोई है
तू बैठा था—तुम बैठे थे
हम बहुत घबराए—तू बहुत घबराया

सर्वत्र कर्ता निर्विभक्तिक है। क्रियाएँ कर्ता के अनुसार वर्ग-वचन लिए हैं—'लड़का सोया' 'लड़की सोई' आदि। यदि अकर्मक क्रिया के वर्ग-वचन कर्ता के अनुसार न हो—क्रिया कर्तृवाच्य न हो—तो फिर कर्ता मे 'ने' विभक्ति (अकर्मक क्रिया होने पर भी) लगे गी—

तू ने नहा लिया
हमने नहा लिया

मा ने नहा लिया

लड़कियों ने नहा लिया

भूत काल की क्रिया है, सकर्मक नहीं है; अकर्मक है, परन्तु भाव-वाच्य प्रयोग है—सर्वत्र पुंवर्ग-एकवचन—'नहा लिया'। इस लिए कर्ता-कारक मे 'ने' विभक्ति लगी है।

साफ मतलब यह कि भूत-काल की क्रिया जब 'कर्मवाच्य' हो, या 'भाववाच्य' हो, तब कर्ता-कारक में 'ने' विभक्ति लगती है, बस। अन्यत्र कहीं भी इस का प्रयोग नही होता—

राम रोटी खाता है–वर्तमान

राम रोटी खाएगा–भविष्यत्

राम, रोटी खा–आज्ञा (कर्ता 'तू' है)

राम रोटी खाए–विधि या आज्ञा

और अकर्मक—

राम सोता है, सोए गा, सोया था, सोए आदि

इस तरह 'ने' का प्रयोग-क्षेत्र बहुत सीमित और स्पष्ट है।

'को' विभक्ति

'ने' के अतिरिक्त अन्य सभी विभक्तियाॅ विविध भाॅति अनेक कारको में चलती हैं—

राम को काशी जाना है

हम सब को अपना काम करना है

राम को सबेरे उठना चाहिए

सर्वत्र कर्ता-कारक में 'को' विभक्ति लगी है।

कर्म-कारक में :—

लड़के ने **साथी को** देखा

मा ने **बच्चे को** दूध पिलाया

सम्प्रदान में :—

गुरु **शिष्य को** विद्या-धन देता है
शिष्य **गुरु को** यथाशक्ति दक्षिणा देते हैं

अधिकरण में :—

रात को ग्यारह बजे गाड़ी जाए गी
'रात को' का अर्थ है—'रात में'।

तादर्थ्य प्रकट करने में—

तुम्हें **देने को** ही ये फल रखे थे

'ने' कृदन्ती भाववाच्य प्रत्यय में 'को' लगा देने से ही 'तदर्थ' अर्थ निकला। 'का' आदि लगा देने से 'योग्य' जैसा अर्थ निकले गा—

पीने का पानी है
पीने की दवा अलग रखो
लगाने की दवा अलग है
नहाने का साबुन ले आना

'पीने का'—पीने योग्य। 'लगाने की दवा'—जो लगाने के लिए ही नियत है। 'को' से 'तदर्थ' की खूब प्रतीति होती है:—

पीने को दूध है, **खाने को** मक्खन है
'पीने को'–पीने के लिए।

'से' विभक्ति

कर्ता-कारक में 'से' विभक्ति लगती है, जब कि क्रिया के करने-न करने में कर्ता की शक्ति का विधान–निषेध हो:—

यह काम तो **राम से** ही हो सके गा
हम से यह काम न हो गा

तुम से जरा भी काम नहीं होता !
उन से रात मे जागा न जाए गा

सर्वत्र कर्ता-कारक 'से' विभक्ति के साथ हैं।

कर्म-कारक में :—

तू ने **राम** से सब कह दिया न !

'कहना' द्विकर्मक क्रिया है। 'राम' 'गौण कर्म' में 'से' विभक्ति लगी है।

करण कारक में :—

राम **चाकू** से कलम बनाता है
हम **दाँतों से** भोजन चबाते हैं
उसे **आँखों से** दिखाई नहीं देता !

हेतु में :—

आँधी से सब फल झर पडे
चिन्ता से आदमी मर लेता है

'चाकू' आदि 'करण' हैं; क्योकि कर्ता उन का उपयोग क्रिया के सम्पन्न करने में करता है। 'हेतु' स्वतः उपस्थित होता है। फल अपने झरने के लिए आँधी का उपयोग नहीं करते। आदमी मरने के लिए चिन्ता का उपयोग नहीं करता ! 'हेतु' की प्रवृत्ति स्वतः होती है, करण का प्रवर्तन 'कर्ता' करता है।

सुख से स्वास्थ्य बढ़ता है

'सुख' यहाँ 'हेतु' है (कारण है), स्वास्थ्य बढ़ने में; 'करण' नहीं है। 'सुख' हमारे हाथ में नहीं, स्वतः आता-जाता है।

अपादान मे:—

पेड़ से पत्ते गिरते हैं
मोहन **कलकत्ते** से लौट आया

प्रयोज्य कर्ता में :—

तुम **नौकर** से ही सब काम कराते हो
हम **तुम** से ही सब काम कराएँ गे

दोनो जगह 'प्रयोज्य' कर्ता मे 'से' विभक्ति लगी है। 'प्रेरणा' प्रक्रिया मे मालूम हो जाए गा कि 'प्रयोज्य कर्ता' क्या होता है।

'में' विभक्ति

अधिकरण कारक में 'में' विभक्ति लगती है, जब कि 'भीतर' अर्थ विवक्षित हो—

स्कूल में बच्चे पढते हैं
घर में सब कुछ है

'पर' विभक्ति

अधिकरण में तब लगती है, जब 'ऊपर' अर्थ विवक्षित हो—

छत पर कौआ बैठा है
कुर्सी पर सभी बैठते हैं

कभी-कभी दोनो विभक्तियाँ चलती हैं—

राम में मेरा पूरा विश्वास है
राम पर मेरा पूरा विश्वास है

पूरे शरीर को ध्यान मे रख पर 'राम पर' है और अन्तः-करण पर ध्यान रख कर 'राम में' है। विश्वास तो मन का ही किया जाता है, या नहीं किया जाता। और, वह 'मन' शरीर का ही एक अङ्ग है।

कभी-कभी प्रयोजन या लाभ प्रकट करने मे भी 'पर' का प्रयोग होता है, यदि उस (प्रयोजन या लाभ) को कुत्सित बतलाना अभीष्ट हो :—

'इस ने इतने **पैसों पर** ईमान खो दिया !'
'उस ने सड़ी-सी **नौकरी** पर इज्जत दे दी !'

'पैसो पर'—पैसो के लिए। 'नौकरी पर'—नौकरी के लिए।

यह इतना दिशा-निर्देश भर है। इसी तरह अन्यत्र समझिए।

के, रे, ने संबन्ध विभक्तियाँ

हिन्दी में विभक्तियाँ सदा एक-रूप रहती हैं। इन के रूप कभी बदलते नही हैं:—

राम ने, हम ने, तुम ने, लड़कों ने,

सर्वत्र 'ने' एकरस है। इसी तरह 'को' 'से' 'मे' 'पर' हैं।

हिन्दी की सबन्ध-विभक्तियाँ हैं—के, रे, ने। ये भी सदा [illegible] रहती हैं, बदलती नही हैं।

राम के एक लड़का है
सुशीला के एक लड़की है
गोविन्द के एक गौ है

'लड़का' 'लड़की' 'गौ' कर्ता कारक हैं। उन का संबन्ध है राम, सुशीला और गोविन्द से, जिन के आगे 'के' विभक्ति लगी है।

तेरे एक गौ है, **मेरे** भी एक ही है।
तुम्हारे एक घोडा है, **मेरे** एक ऊँट है

'रे' विभक्ति संबन्ध मे है। इस का प्रयोग 'मध्यमपुरुष' और 'उत्तमपुरुष' सर्वनामो में होता है।

अपने भी एक गौ है
अपने तो चार ऊँट भर हैं

आत्मवाचक 'आप' शब्द मे 'ने' विभक्ति लगती है। इसी तरहः—

यशोदा के एक पुत्री हुई
देवकी के एक पुत्र हुआ

'हुआ' का अर्थ है—'पैदा हुआ'।

तेरे एक लड़का हुआ
मेरे चार लड़कियाँ हुईं
अपने भी चार लड़कियाँ हुईं

सर्वत्र ('के' की ही तरह) 'रे' और 'ने' विभक्तियाँ हैं।

अव्ययो के योग मे भी ये संबन्ध विभक्तियाँ आती हैं—

राम के अनुसार
सीता के अनुसार
छात्रो के अनुसार
तुम्हारे अनुसार
अपने अनुसार

दिशावाचक शब्दो के योग मे भी :—

१—**राम के** इधर, उधर, नीचे, ऊपर
२—**सीता के** इधर, उधर, नीचे, ऊपर
३—**तुम्हारे** इधर, उधर, नीचे, ऊपर
४—**राम के** बगल में सीता जी बैठी हैं

'बगल' शब्द भी यहाँ दिशावाचक है। शेष सब दिशावाचक अव्यय हैं ही। यदि अङ्गवाचक 'बगल' शब्द हो, तब संबन्ध-विभक्ति नही, संबन्ध-प्रत्यय लगे गा—

राम की बगल में फोड़ा हो गया है

संबन्ध-विभक्तियो से संबन्ध-प्रत्यय अलग हैं।

संबन्ध-प्रत्यय—क, र, न

अभी तक हिन्दी की विभक्तियो की चर्चा रही, जो सदा अपरिवर्तित रहती हैं। अब संबन्ध-प्रत्यय देखिए। संबन्ध-प्रत्ययो के रूप बदलते हैं। क, र, न, ये तद्धितीय संबन्ध-प्रत्यय हैं, जिन में हिन्दी की 'आ' पुंविभक्ति लग कर:—

का, रा, ना,

रूप हो जाते हैं। प्रयोग होते हैं:—

राम का घर
तेरा घर
अपना घर

बहुवचन में 'आ' को 'ए' हो जाता है—

राम के लड़के
तेरे लड़के
अपने लड़के

स्त्रीवर्ग में 'आ' को 'ई' हो जाता है; यानी 'आ' को हटा कर उस की जगह 'ई' आ जाती है:—

राम की लड़की
तेरी लड़की
अपनी लड़की

विभक्तियों के रूप बदलते नहीं हैं; दोनो वर्गों और वचनो में एकरूप रहती हैं :—

राम के एक गौ है
सीता के एक ऊँट है
माधव के सब कुछ है
तुम्हारे चार घोडे थे; एक कहाँ गया ?

सर्वत्र 'के' 'रे' रूप हैं। अस्तित्व मात्र का विधान है और संबन्ध में 'के' 'रे' विभक्तियाँ हैं। यदि अर्थान्तर या क्रियान्तर उपस्थित (विधेय) हो, तो फिर विभक्ति नहीं, संबन्ध-प्रत्यय लगे गा:—

१—यह घोड़ा **राम का** है
२—**राम का** घोड़ा **काला** है
३—**तेरी** लड़की पढ़ती है
४—**हमारे** लड़के **खेलते** हैं

पहले वाक्य में घोडे के अस्तित्व मात्र का विधान नहीं है; अवधारण है। अन्य-व्यवच्छेद है। यह घोड़ा राम का है; दूसरे का नहीं। इस विशेष अर्थ के कारण संबन्ध-प्रत्यय लगा है। दूसरे वाक्य में घोडे के रंग का विधान है, इस लिए संबन्ध-प्रत्यय है। तीसरे वाक्य में भेद्य ('लड़की') के पढ़ने का विधान है। सो, क्रियान्तर उपस्थित होने से संबन्ध-प्रत्यय। चौथे वाक्य में भी 'खेलना' क्रिया है।

संक्षेप यह कि 'भेद्य-भेदक' भाव जहाँ हो, वहाँ संबन्ध-प्रत्यय लगता है। अन्यत्र विभक्तियाँ चलती हैं।

भेद्य और भेदक

लड़का पढ़ता है
लड़की खेलती है

यहाँ यह नही मालूम पड़ता कि वह लड़का किस का है, जो पढ़ रहा है ! लड़की किस की है जो खेल रही है।

राम का लड़का पढता है
गोविन्द की लड़की खेलती है

अब भेद खुल गया कि लड़का किस का है और लड़की किस की है। 'राम का' और 'गोविन्द की' भेदक शब्द हैं। इन के 'भेद्य' हैं—'लड़का' और 'लडकी'। भेद्य के अनुसार ही भेदक के वर्ग-बचन रहते हैं:—

तेरा लड़का, तेरे लड़के, तेरी लड़की

'तेरे लड़के' में 'तू' (प्रातिपदिक) एक ही है, पर 'लड़के' चार हैं—'तेरे'। और:—

सुशीला का लड़का
राम की लड़की

'सुशीला' स्त्री है; पर उसका बना 'भेदक' पुंवर्ग में है—'सुशीला का' 'लड़का'। 'राम' पुंवर्ग है, पर 'लड़की' (भेद्य) के अनुसार-'राम की' स्त्रीवर्ग-प्रयोग भेदक का है।

तुम्हारा लड़का

'तुम' बहुवचन; पर 'तुम्हारा' (भेदक) एकवचन है, 'लड़का' जैसा। 'लड़का' एक 'तुम्हारा'।

सो, 'भेदक' का रूप सदा भेद्य के अनुसार रहता है; जैसे विशेषण का विशेष्य के अनुसार।

विशेषण-विशेष्य:—

काला घोड़ा, काले घोड़े, काली गौ

भेदक-भेद्य:—

तेरा घोड़ा, तेरे घोड़े, तेरी गौ

विशेषण से विशेषता प्रकट होती है—कालापन, पीलापन, अच्छाई, बुराई आदि। और, 'भेदक' से विविध संबन्ध प्रकट होते हैं—

राम का लड़का—राम के लड़के

पितृ-पुत्र संबन्ध।

राम का पिता—सुशीला का पिता

सन्तति-पितृ-संबन्ध।

नदी की मछलियाँ

आधार-आधेय संबन्ध।

मछलियों की नदी

आधेय-आधार संबन्ध।

तुलसीदास की रामायण

कर्ता-कृति संबन्ध।

इस तरह अनन्त संबन्ध हैं, जो 'क' 'र' 'न' प्रत्ययो से प्रकट होते हैं।

कभी-कभी कृदन्त प्रत्ययो मे लगकर 'क' विविध अर्थ प्रकट करता है। भेद्य-भेदक भाव विशेषता के साथ प्रकट होता है—तब ऐसे भेदक विशेषण भी कहे जा सकते हैं:—

पढ़ने का कमरा
पढ़ने की जगह
पढ़ने की पुस्तक

प्रत्यय से विशेषता प्रकट होती है। 'पढने का' भेदक है और 'कमरा' भेद्य है। आधेय-आधार संबन्ध है। 'जगह' के अनुसार 'पढ़ने

की' है, स्त्रीवर्ग-एकवचन। 'पढ़ने के कमरे' में 'कमरे' के अनुसार भेदक है—'पढ़ने के'। 'ना' को सर्वत्र 'ने' होगया है, संबन्ध-प्रत्यय 'क' (का, की) सामने होने से।

कलम बनाने का चाकू
दाल बनाने की बटलोही

पहले वाक्य में 'बनाने का' करण-प्रधान भेदक है। जिस से कलमें बनाई जाती हैं, वह कलम '**बनाने का**' चाकू।

दूसरे वाक्य में भेदक ('बनाने की') अधिकरण प्रधान है—जिस मे बनाई जाती है, वह 'बनाने की'। 'बटलोही' भेद्य है।

इसी तरहः—

पशुओं का भोजन घास है।

यहाँ 'भोजन' का भेदक है—'पशुओ का'। (भेद्य) 'घास' विधेय है। 'भोजन' उद्देश्य है—'भोजन घास है'। किस का भोजन ? '**पशुओ का**' भोजन। यहाँ 'भक्षक-भक्ष्य' संबन्ध है। पशु खाने वाला-'कर्ता' और 'भोजन' कर्म—जो खाया जाए।

फलो का भोजन उत्तम होता है

यहाँ 'फलो का' भेदक है—'भोजन' भेद्य है। यहाँ अभेद में भेद का प्रयोग है। फल ही भोजन हैं। उसी को कह दिया गया—'**फलों का** भोजन'। विशेषण-विशेष्य हैं। भोजन बहुत तरह का होता है; परन्तु '**फलो का भोजन** उत्तम होता है'। उत्तमता विधेय है। 'भोजन' उद्देश्य है। 'फलो का' भेदक है। ये ऐसे भेदक विशेषण-रूप हैं।

तद्धित प्रत्यय के आगे भी 'क' लग कर भेदक बनाता है—**टाँगे वाले का लड़का' 'लकड़हारे की लड़की'**। ये भेदक मात्र हैं। पितृ-पुत्र संबन्ध।

इतने उदाहरण बहुत हैं। समझने की चीज इतनी कि 'के' 'रे' 'ने' संबन्ध-विभक्तियाँ हैं, जो उत्पत्ति या अस्तित्व मात्र के कथन—क्षेत्र में आती हैं; अव्ययो के योग में तथा दिशावाचक अन्य शब्दो के योग में भी लगती हैं और क, र, न संबन्ध-प्रत्यय हैं, जो 'अ' पुंप्रत्यय लगने से का, रा, ना बन जाते हैं और 'भेद्य-भेदक' भाव प्रकट करने के काम आते हैं!

दूसरा खण्ड

(क्रिया-प्रकरण)

पहला अध्याय

पहले खण्ड में व्याकरण और भाषा का संबन्ध, भाषा का रूप, वर्ण-परिचय तथा नाम-सर्वनाम का परिचय दिया गया। नामों में लग कर कर्तृत्व आदि स्पष्ट करनेवाले प्रत्ययों का भी उल्लेख हुआ, जिन्हें 'विभक्ति' कहते हैं। यानी वाक्य के एक प्रमुख अङ्ग का परिचय हुआ। अब वाक्य के दूसरे प्रमुख अङ्ग—'क्रिया'—का परिचय इस खण्ड में दिया जाए गा।

राम जाता है

वाक्य में 'राम' उद्देश्य है। 'जाता है' विधेय है। 'क्रिया' की प्रधानता वाक्य में होती है। परन्तु क्रिया तो किसी प्राणी या वस्तु में ही हो गी न! इसी लिए पहले नाम-सर्वनाम कहे गए। इस खण्ड में 'क्रिया' का स्वरूप आने पर साधारण वाक्य बन जाए गा। फिर ऊपरी टीमटाम रह जाएगी—विशेषण, अव्यय आदि। वह सब तीसरे खण्ड में आए गा। पूरा कुटुम्ब आगे सामने आ जाए गा। 'नाम' और 'क्रिया' मुख्य हैं। इन मे से एक भी न हो, तो वाक्य न बने गा।

क्रिया का स्वरूप

किसी के अस्तित्व या स्थिति-प्रवृत्ति आदि का कथन जिस शब्द के द्वारा होता है, उसे व्याकरण में 'क्रिया' या 'क्रिया-पद' कहते हैं:—

ईश्वर है
रामू रोता है
श्यामू पानी पीता है

ये तीन वाक्य हैं। पहले वाक्य में 'ईश्वर' उद्देश्य है और उस की सत्ता प्रतिपाद्य है। ईश्वर के अस्तित्व का विधेयात्मक कथन है। यह अस्तित्व 'है' शब्द से प्रकट है, इस लिए 'है' क्रिया-पद है। 'ईश्वर' संज्ञा-पद है। अखिल भुवन की नियामक शक्ति का नाम 'ईश्वर' है। वह दिखाई नही देता; इस लिए कुछ लोग कहते हैं कि कोई 'ईश्वर' जैसी वास्तविक चीज है नही; कल्पित है। उन्ही को दृष्टि में रख कर विधेयात्मक प्रतिपादन—'ईश्वर है'। कल्पित वस्तु के भी नाम रख लिए जाते हैं—'ईश्वर एक कल्पित चीज है' ऐसा नास्तिक कहते हैं।

दूसरे वाक्य में 'रोता है' क्रिया-पद और तीसरे में 'पीता है' क्रिया-पद। होना, रोना, पीना आदि क्रियाएँ हैं।

अस्तित्व या स्थिति-प्रवृत्ति आदि का निषेधात्मक प्रतिपादन भी होता है, तब निषेध 'अव्यय' शब्दो के द्वारा होता है—

ईश्वर नही है
रामू रोता नही है
श्यामू पानी नही पीता है

इन वाक्यो मे निषेधात्मक प्रतिपादन है। 'नही' अव्यय है और 'है' 'रोता है' 'पीता है' क्रिया-पद हैं।

क्रियापद का मूलरूप—'धातु'

'लड़को ने कहा' 'लड़कियो ने कहा' आदि वाक्यो में उद्देश्य (कर्ता-कारक) हैं—'लड़को ने'—'लडकियो ने'। इन उद्देश्य-पदो के मूल रूप 'लड़का' 'लड़की' को 'प्रातिपदिक' कहते हैं। इसी तरह 'है'

'हो' 'पीता है' 'पिए गा' 'पिया' आदि क्रिया-पदो के मूल रूप को 'धातु' कहते हैं। जैसे एक ही (पीतल आदि) धातु से तरह-तरह के बर्तन बनते हैं, उसी तरह एक-एक 'धातु' शब्द से तरह-तरह के विभिन्न क्रिया-पद बनते हैं। इन सभी क्रियापदो में 'धातु' एक ही दिखाई देती है; जैसे नीचे 'पी' :—

पीता है, पिया, पिए गा, पी कर, पीने आदि।

होना, खाना, पीना, लेना आदि सामान्य क्रिया-वाचक पद हैं, जिन्हे (कृदन्ती) 'भाववाचक संज्ञा' भी कहते हैं। इन सभी पदो में 'ना' दिखाई देता है और उस के पूर्वांश भिन्न-भिन्न हैं। इस से स्पष्ट हुआ कि 'ना' प्रत्यय है, जो सर्वत्र लगा हुआ है। इस 'ना' को अलग कर लेने से जो शब्द शेष रहता है, वही 'धातु' है।

पीना, खाना, होना, रोना, लेना

ये सामान्य क्रियावाचक शब्द हैं। 'ना' अलग करके—

पी, खा, हो, रो, ले

ये 'धातु' शब्द हैं। इन्ही से विविध क्रिया-पद बनते हैं। केवल 'है' क्रिया-पद ऐसा है, जिस की 'धातु' दिखाई नहीं देती। 'हो' धातु के 'होता' आदि रूप हैं, जैसे 'पी' आदि के 'पीता' आदि। 'है' सब के साथ लग कर 'होता है' 'पीता है' आदि क्रियाओ पद बनाती है। 'है' स्वतंत्र है और 'होता है' 'पीता है' आदि क्रिया में इस का सहयोग है। 'ऐसा ही हो गा' यहाँ 'होगा' क्रिया-पद 'हो' धातु से है। 'हैं' का सहयोग नहीं है। इसी तरह—'ऐसा हो, तो लौट आना' यहाँ भी 'हो' क्रिया-पद स्वतंत्र है। परन्तु 'होता है' आदि में 'है' का सहयोग है। 'राम दयालु है' यहाँ 'है' स्वतंत्र क्रिया है। इस

'है' से भाववाचक संज्ञा नहीं बनती। संस्कृत में भी 'अस्ति' क्रिया है। इस में जो धातु है—'अस्' उस से भाववाचक संज्ञा नहीं बनती। जैसे 'पठनम्' 'गमनम्' आदि भाववाचक संज्ञाएँ 'न' प्रत्यय से बनती हैं—पठ् - गम् आदि धातुओं से, उस तरह 'अस्ति' की (भाववाचक संज्ञा) 'अस्' धातु से नहीं बनती। परन्तु 'अस्ति' 'आसन्' आदि क्रिया-पदों में 'अस्' रूप दिखाई दे रहा है, जिस से स्पष्ट हो जाता है कि धातु 'अस्' है! उसी तरहः—

है, हैं, हो

यहाँ 'ह' दिखाई दे रहा है। 'तुम मूर्ख **हो**' में 'हो' क्रिया-पद 'ह' धातु का है और 'वह काम कठिन **हो**, तो वैसा कहना' यहाँ 'हो' पद है 'हो' धातु का। 'ह' से निश्चयात्मक प्रतिपादन होता है—'तुम मूर्ख हो'। 'हो' धातु से सन्दिग्धता प्रकट की जाती है, संभावना भी—'यदि ऐसा हो'। 'ह' धातु के 'हो' का कर्ता मध्यमपुरुष-बहुवचन 'तुम' है और 'हो' धातु के 'हो' क्रिया पद का कर्ता 'अन्यपुरुष' एकवचन है—**काम हो, बोध हो, वर्षा हो**, आदि।

सो, 'है' क्रिया-पद की धातु 'ह' है। इस से भाववाचक संज्ञाएँ नहीं बनती हैं। शेष सब क्रियापदों का 'धातु'—विश्लेषण बहुत सरल है—भाववाचक संज्ञाओं से 'ना' अलग कर दो, शेष अंश 'धातु' है।

हिन्दी की 'ह' धातु संस्कृत 'अस्' से है 'हो' धातु 'भू' से है।

सभी धातु स्वरान्त हैं

हिन्दी में सभी धातु स्वरान्त हैं, जैसे कि अन्य सब शब्द। यहाँ कोई शब्द व्यंजनान्त या विसर्गान्त नहीं है। संस्कृत के जो अव्यय ('प्रायः' आदि) या 'समस्त' संज्ञा-पद ('मनः स्थिति' 'श्रीमान्' आदि') तद्रूप चलते हैं, उनकी बात नहीं। यहाँ हिन्दी के 'अपने'

क्रिया-पद हिन्दी के सब 'अपने' हैं—परम्पराप्राप्त अपने या 'तद्भव'—रूप। 'पठ्' संस्कृत की धातु व्यंजनान्त है। इस के 'ठ्' को अकारान्त 'ढ' कर के हिन्दी ने अपनी 'पढ' धातु बना ली। 'पढ़ता है', 'तू पढ़' आदि क्रिया-पद। संस्कृत मे 'स्वप्' धातु है व्यंजनान्त। इस के 'प्' का लोप करके और 'व' को 'ओ' करके हिन्दी ने अपनी 'सो' धातु बना ली। 'सोता है' 'सोए' आदि क्रिया-पद। संस्कृत मे 'रुद्' धातु है व्यञ्जनान्त। इस के 'द्' का लोप कर के और 'उ' को 'ओ' कर के हिन्दी ने अपनी 'रो' धातु बना ली। 'रोता है' 'रोया' आदि क्रिया-पद हैं। संस्कृत मे 'खाद्' धातु है व्यंजनान्त। इस के 'द्' का लोप कर के हिन्दी की 'खा' धातु बनी स्वरान्त। 'खाता है' 'खाए' आदि क्रिया-पद। बहुत साफ चीज है।

'क्रिया' बनाने वाले 'प्रत्यय'

क्रिया-पद बनाने के लिए धातुओं में विविध 'प्रत्यय' जोडे जाते हैं। 'खाया' 'खाए' आदि ('खा') के आगे जो शब्द दिखाई देते हैं, वे 'प्रत्यय' हैं। प्रत्ययो से ही विविध विशेष अर्थों की प्रतीति है। 'खाया' से भूतकाल और 'खाए' से विधि या आज्ञा जान पड़ती है। यह सब बताना 'या'—जैसे प्रत्ययो का काम है। 'खा' तो बस अपना क्रिया-मात्र अर्थ बतलाए गा। उस के आगे विविध प्रत्ययो के विविध विशेष अर्थ।

प्रत्ययों के दो भेद –'कृदन्त' और 'तिङन्त'

हिन्दी के क्रिया-पदो मे जो प्रत्यय लगे दिखाई देते हैं; उन्हे दो प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है—'कृदन्त' और 'तिङन्त'। ये 'कृदन्त'—'तिङन्त' संस्कृत (पाणिनि-व्याकरण) के शब्द हैं। वहाँ ये 'यौगिक' शब्द हैं। हिन्दी मे 'रूढ़' या 'पारिभाषिक' शब्द

समझिए। भारत की सभी भाषाओं में संस्कृत शब्द चलते हैं। हिन्दी में भी चलते हैं।

कृदन्त प्रत्यय ; 'कृदन्त' प्रत्यय वे हैं जिन के लगने से क्रिया-पदों के रूप 'नाम' (संज्ञा) की तरह 'पुंवर्ग' 'स्त्रीवर्ग' में भिन्न-रूप से चलते हैं--

लड़का जाता है, खाता है, पीता है
लडके जाते हैं, खाते हैं, पीते हैं
लडके गए थे, आए थे, सोए थे
लड़की जाती है, खाती है, पीती है

'लड़का' की तरह 'जाता' 'खाता' आदि हैं। 'लड़के' की तरह 'जाते' 'खाते' आदि हैं और 'लड़की' की तरह 'जाती' 'खाती' और 'पीती' शब्द हैं। तो, 'ता' 'या' आदि 'कृदन्त' प्रत्यय हुए, जो कि 'जा' आदि धातुओं मे लगे हैं।

'तिङन्त' प्रत्यय : 'तिङन्त' प्रत्यय वे हैं, जिन के लगने से क्रिया रूप पुंवर्ग और स्त्री-वर्ग में एक-से रहते हैं—बदलते नही हैं :—

राम जाए—लड़की जाए
राम पढ़े—सीता पढ़े
राम, पढ़—सीता, पढ़

क्रिया-पद जैसे पुंवर्ग में, वैसे ही स्त्रीवर्ग में। कोई परिवर्तन नहीं है। इसी तरह :—

लड़के जाएँ—लड़कियाँ जाएँ
लड़को, पढ़ो—लडकियो, पढ़ो

'जाएँ' 'पढो' दोनो वर्गों मे एकरूप हैं। यानी 'ए' 'एँ' आदि जो प्रत्यय दिखाई दे रहे हैं, 'तिङन्त' हैं।

हिन्दी ने 'कृदन्त' प्रत्यय' व्यंजनादि रखे हैं—'त' 'य' 'न' आदि। तिङन्त प्रत्यय स्वर मात्र हैं, कहीं कोई व्यंजन नहीं है।

ये दो तरह के प्रत्यय क्यों रखे ? एक ही तरह के क्यों नहीं, यह प्रश्न उठ सकता है। इस का समाधान अभी आगे हो जाए गा। एक विशेष व्यवस्था के लिए यहाँ दो तरह के प्रत्यय हैं—'कृदन्त' और 'तिङन्त'।

क्रिया के 'सिद्ध' और 'साध्य' रूप

किसी की किसी क्रिया का जब हम अभिधान करते हैं, तो उस (क्रिया) के दो में-से एक रूप सामने दिखाई देता है—'सिद्ध' या 'साध्य'।

राम स्कूल गया
राम स्कूल जाता है
राम स्कूल जा रहा है

इन वाक्यों में 'गया' 'जाता है' 'जा रहा है' क्रिया-पद हैं। 'है' इन मे सहायक क्रिया है। 'जाता' 'जा रहा' क्रिया के प्रधान अंश हैं। ये सब कृदन्त प्रत्ययों से बने हैं, क्योंकि स्त्रीवर्ग मे रूप-भेद हो जाए गा। 'गया' 'जाता है' 'जा रहा है' आदि पदों से क्रिया की निश्चित निष्पत्ति प्रकट है। यानी राम के जाने में कोई सन्देह नहीं, वह 'गया' या 'जाता है' हम देख रहे हैं। हम देख रहे हैं—'वह जा रहा है'। ऐसी निश्चित क्रिया 'सिद्ध' कहलाती है, जिस में कृदन्त प्रत्ययों का उपयोग होता है।

जिन क्रियाओं की निष्पत्ति सन्दिग्ध होती है, उन्हे 'साध्य' कहते हैं। 'सिद्ध' निश्चित और 'साध्य' अनिश्चित। साध्य तो अनिश्चित होता ही है! 'साध्य' क्रिया-पद 'तिङन्त' प्रत्ययों से बनते हैं :—

'राम पढ़े'—'सीता पढ़े'

दोनो जगह 'पढ़े' है—तिङन्त क्रिया। कारण यह कि यहाँ 'पढना' क्रिया 'सिद्ध' नही है, 'साध्य' है। पता नही, 'राम' पढे गा कि नही! आज्ञा का मानना-न मानना उस पर है! यह भी पता नहीं कि आज्ञा देनेवाला ही अपनी आज्ञा वापस ले ले, या बदल दे! सो, 'पढना' निश्चित नही है—'साध्य' है। इसी लिए तिङन्त प्रयोग है—'राम पढ़े' 'सीता पढ़े'।

इसी तरह :—

'राम सौ बरस जिए'—'सीता सौ बरस जिए'

दोनो जगह 'जिए' तिङन्त क्रिया है। क्रिया ('जीना') निश्चित नही है, कामना भर है जीने की। पता नही, सौ वर्ष जिए गा, या नहीं। क्रिया 'साध्य' है और इसी लिए तिङन्त-प्रयोग है, जो पुंवर्ग-स्त्रीवर्ग मे एक-सा है—'जिए'।

आगे इन प्रत्ययो का अधिक खुलासा हो जाए गा। यहाँ इतना समझिए कि हिन्दी क्रिया-पदो के प्रत्यय कुछ 'कृदन्त' हैं और कुछ 'तिङन्त' हैं और उन की सुनिश्चित प्रयोग-व्यवस्था है। 'सिद्ध' क्रिया कृदन्त प्रत्ययो से कही जाती है और 'साध्य' क्रिया 'तिङन्त' से।

क्रिया के निषेधात्मक अभिधान में भी 'सिद्ध'-'साध्य' की यही स्थिति है :—

> 'राम काशी नही गया है'
> 'रमा काशी नही गई है'

क्रिया-निष्पत्ति निश्चित रूप से नहीं हुई है। 'सिद्ध' प्रयोग हैं।

> **राम पढ़ता** नही है
> **रमा पढ़ती** नहीं है

क्रिया की निष्पत्ति निश्चित रूप से नहीं है। 'सिद्ध' प्रयोग हैं। इसी लिए निश्चयात्मक जोरदार अव्यय 'नही' है। परन्तुः—

राम खतरे मे न पड़े !

रमा खतरे मे न पड़े !

यहाँ क्रिया की अनिष्पत्ति निश्चित नहीं है। कामना है कि खतरे मे न पड़े। परन्तु पडना या न पडना निश्चित नही ! साध्यावस्था मे है 'न पडना'। इसी लिए तिङन्त-प्रयोग।

कृदन्त प्रत्यय 'त' और 'य'

हिन्दी की 'सिद्ध' क्रियाओ मे लगने वाले दो मुख्य प्रत्यय हैं—'त' तथा 'य'।

१—'त' प्रत्यय

'त' प्रत्यय में 'आ' पुंविभक्ति लग कर 'ता' रूप हो जाता है। 'आ' संज्ञा-विभक्ति है, इस लिए 'ता' के रूप भी 'लडका' जैसी सज्ञाओ की ही तरह चलते हैं। बहुवचन में 'ए' और स्त्रीवर्ग में 'ई' अन्त मे हो जाता है—जाता, जाते, जाती।

यह 'त' प्रत्यय सामान्य है। 'य' भूतकाल का प्रत्यय है।

सामान्य प्रवृत्ति या स्थिति प्रकट करने के लिए 'त' प्रत्यय का प्रयोग होता है—

शेर मास खाता है

गौ घास-पात खाती है

'है' सहायक क्रिया है। 'शेर मास खाता है' का मतलब यह नही है कि यह बात कहते समय वह मास खा ही रहा हो। परन्तु फिर भी, ऐसी क्रियाओ को भी 'है' के कारण 'वर्तमान काल की' कहा जाता है। ध्यान से देखा जाए, तो है भी वर्तमानता ही क्रिया की। क्रिया

जब आरम्भ हो, तब से ले कर, जब तक वह पूरी न हो **जाए, समाप्त** **न** हो जाए, तब तक 'वर्तमान' ही कहा जाए गा। क्रिया की वर्तमानता स्पष्ट है। सृष्टि के प्रारम्भ से शेर ने मास खाना शुरू किया था और अब तक वह मास ही खाता है। यों शेर के द्वारा मास खाना बराबर वर्तमान है। इसी तरह :—

सूरज प्रतिदिन **निकलता है**
और **छिप जाता है**

ये भी 'वर्तमान' क्रियाएँ हैं। यदि क्रिया समाप्त हो जाए और फिर कहा जाए :—

विश्वामित्र ने भी कभी मांस **खाया था**

तो 'खाया था' क्रिया भूतकाल की हुई। मांस खाना वह भूतकाल की चीज। परन्तु :—

जंगली अवस्था में सभी मानव-प्राणी

मास **खाते थे**, चमड़ा **ओढ़ते थे**, जंगल में **रहते थे**

यहाँ 'त' सामान्य प्रत्यय के साथ 'था' सहायक क्रिया भूतकाल की है। 'है' से क्रिया की वर्तमानता प्रकट होती है:—

राम स्कूल **जाता है**

परन्तु—

राम स्कूल **जाता था**

बात दूसरी है। 'था' होने से मतलब यह निकला कि पहले (भूतकाल में) राम का स्कूल जाना जारी था। यानी 'भूतकाल में क्रिया की वर्तमानता' 'राम स्कूल जाता था' का अर्थ है। क्रिया 'सिद्ध' है।

क्रिया की प्रवर्तमानता

ऊपर बताया गया कि 'सूरज निकलता है' 'शेर मांस खाता है' इत्यादि सामान्य कथन हैं और इन्हे ही 'वर्तमान क्रिया' या 'वर्तमान काल की क्रिया' कहते हैं। इस की कोई सीमा नही। परन्तु क्रिया की तात्कालिक प्रवृत्ति या प्रवर्तमानता बतलाना हो, तो मुख्य धातु के साथ 'रह' सहायक क्रिया आती है और 'है' तो रहे गी ही—

राम स्कूल **जा रहा है**
सुशीला गेद **खेल रही है**
लड़के ऊधम **मचा रहे हैं**

'रह' धातु का यह कृदन्त रूप किसी भी क्रिया की 'प्रवर्तमानता' प्रकट करता है :—

शेर मास खाता है—क्रिया की **वर्तमानता**
शेर मास खा रहा है—क्रिया की **प्रवर्तमानता**

बात करते समय यदि क्रिया की प्रवृत्ति हो—क्रिया चल रही हो, तो 'प्रवर्तमान क्रिया'। क्रिया प्रारम्भ हो कर समाप्त न हुई हो, तो 'वर्तमान क्रिया'। 'वर्तमान क्रिया' का यह मतलब नहीं कि उस कथन के समय भी वह जारी ही हो।

सो, 'त' प्रत्यय सामान्य कथन में आता है और 'है' के कारण वर्तमानता प्रकट होती है। यदि 'ह' धातु की भूतकालिक क्रिया 'था' सहायक रूप से हो, तो मतलब निकले गा कि भूतकाल में वह क्रिया उस समय वर्तमान थी—जारी थी—

तब राम काशी में **पढ़ता था**

जब की बात है, राम का पढ़ना जारी था; यह मतलब।

यदि 'त'-प्रत्ययान्त के साथ 'हो गा' सहायक क्रिया हो, तो **क्रिया की वर्तमानता** की संभावना सूचित हो गी। संभावना तो संभावना ही ठहरी! अधिक झुकाव 'होने' की ओर होता है—

राम **पढ़ता हो गा**
रमा **खेलती हो गी**

क्रिया की वर्तमानता संभावित है। बहुत कर के राम पढ़ता हो गा और रमा खेलती हो गी। पूरी जानकारी नहीं है; फिर भी क्रिया की वर्तमानता की ओर झुकाव है। यह 'त' का प्रभाव है। 'हो गा' संभावना मे है।

यदि क्रिया की वर्तमानता संभावित भी न हो, सन्देह हो, तो फिर 'गा' के बिना 'हो' का ही सहायक रूप से प्रयोग हो गाः—

राम **पढ़ता हो**, तो पढ़ने देना

यहाँ सन्देह है। संभावना मे एक ओर कुछ निश्चय-सा रहता है और सन्देह मे दोनो पलडे बराबर रहते हैं। '**पढ़ता हो**, तो पढने देना, नही तो कुछ काम कराओ।'

पढ **रहा हो**, तो पकड़ लाओ
खेल **रहा हो**, तो पकड़ लाओ

यहाँ पढने-खेलने की **प्रवर्तमानता** है। कभी-कभी प्रवर्तमानता प्रकट करने के लिए 'त' का ही प्रयोग कर देते हैं :—

लडकी **खेलती हो**, तो पकड़ लाओ

खेलने की **प्रवर्तमानता** 'हो' से सन्दिग्ध है। यानी 'वर्तमान' या (कभी कभी) 'प्रवर्तमान' रूप क्रिया का प्रकट करने के लिए 'त' प्रत्यय काम में आता है। 'है' सहायक क्रिया से वर्तमानता प्रकट होती है; 'था' से क्रिया की भूतकाल मे वर्तमानता प्रकट होती है. 'हो गा'

लगा देने से क्रिया की वर्तमानता संभावित होती है और 'हो' मात्र लगाने से वर्तमानता मे सन्देह प्रकट होता है।

'त' से भूतकाल की प्रतीति

ऊपर बताया गया कि 'त' एक सामान्य प्रत्यय है, जो 'है' आदि सहायक क्रियाओ के सहयोग से वर्तमानता आदि प्रकट करता है। परन्तु, यदि कोई सहायक क्रिया न हो और एक शर्त के रूप में **कारण-कार्य** रूप से वाक्यो का प्रयोग हो, तो **भूतकाल में क्रिया की अनिष्पत्ति** प्रकट होती है :—

वर्षा होती, तो अन्न होता
जनता सुखी होती, तो शासन समृद्ध होता

'तो' अव्यय एक शर्त के रूप में हैं और दोनो वाक्यो मे **कारण-कार्य** भाव प्रकट है। इस से प्रकट है कि क्रिया हुई नही है! न वर्षा ही हुई है, न अन्न ही पैदा हुआ है! इसी को 'हेतुहेतुमद् भूत' कहते हैं। ऐसा भूतकाल, जिस में 'हेतु' और 'हेतुमान्' हो। वर्षा हेतु, अन्न का होना 'हेतुमान्'।

'य' प्रत्यय भूतकाल मे

केवल 'ह' धातु का वर्तमान काल का रूप है—'है'। यह 'है' क्रिया ही अन्य सभी क्रियाओ की सहकारिता कर के उन की वर्त-मानता प्रकट करती है। उसी 'ह' धातु का भूतकाल का रूप है—'था'। 'है' तिङन्त क्रिया है 'था' कृदन्त। 'है' तिङन्त होने पर भी निश्चयात्मक है। 'है' में सन्देह क्या? और 'था' तो प्रत्यय से भी 'सिद्ध' रूप है। अन्य सब धातुओ की भूतकाल की क्रियाएँ 'य' प्रत्यय से बनती हैं। 'य' में संज्ञा-विभक्ति 'आ' लग कर 'या' रूप हो जाता है:—

राम् घर **आया**, तब मा ने एक फल **खाया**

राम् का 'आना' और मा का फल 'खाना', ये दोनो क्रियाएँ पूरी हो चुकी हैं। यह भूत काल की बात हो गई। यानी 'आया' और 'खाया' क्रियाओ की निष्पत्ति भूतकाल की चीज है। इन्ही को 'भूतकाल की क्रिया' या 'सामान्य भूतकाल की क्रिया' कहते हैं। अर्थात् 'य' प्रत्यय सामान्य भूतकाल (क्रिया का) प्रकट करता है।

आसन्न भूतकाल

इसी 'य' प्रत्यय को वर्तमान काल प्रकट करने वाली 'है' क्रिया का सहयोग मिल जाता है, तब भूतकाल मे विशेषता आ जाती है। 'य' से तो भूतकाल ही प्रगट होता है; परन्तु वर्तमान काल की 'है' क्रिया भी अपना प्रभाव रखती है:—

राम् ने भात **खाया** है—मै ने दूध **पिया** है

ऐसा भूत काल है, जो वर्तमान के समीप है—'य' भूतकाल का प्रत्यय है, (वर्तमान काल) के समीप है। मतलब यह निकलता है कि भात 'खाने' की और दूध 'पीने' की क्रिया पूरी हो चुकी है, परन्तु वह अभी दूर की चीज नहीं। वर्तमान के समीप भूत है। 'आसन्न' कहते हैं समीपस्थ को। 'आसन्न भूतकाल'—(वर्तमान के) समीप का भूतकाल। 'है' के समीप 'य' है न!

पूर्ण भूतकाल

इसी 'य' को जब भूतकाल की 'था' क्रिया का सहयोग मिल जाता है, तब 'पूर्ण भूतकाल' की क्रिया बन जाती है। 'पूर्ण' का मतलब यहाँ 'आसन्न' के विपरीत 'दूर' है। वर्तमान से दूर पड़ जानेवाला भूतकाल—'पूर्ण भूतकाल'। 'य' भूतकाल का प्रत्यय है ही और फिर उस को भूत काल के 'था' क्रियापद का सहयोग; तो द्विवल

('डबल') भूत हो गया न ? द्विबल का मतलब 'एक और एक ग्यारह' । दो भूतकालिक प्रत्यय-'या' और 'था' । सोः—

राम ने भात **खाया था**
मै ने फल **खाया था**

यो 'खाया था' 'पिया था' 'आया था' आदि क्रियाएँ 'पूर्ण भूत काल' की ।

भूतकाल की सन्दिग्ध क्रिया

'य' प्रत्यय के साथ, सन्देह प्रकट करने वाली 'हो' जैसी तिङन्त क्रिया भी हो, तो प्रकट होता है कि भूतकाल मे वह क्रिया हुई है, इस का निश्चय नही, सन्देह है:—

राम ने दूध **पी लिया हो**, तो बुला लाओ
गोविन्द यहाँ **आया हो**, तो अच्छा !

राम का दूध पीना और गोविन्द का आना भूतकाल की क्रियाएँ हैं, परन्तु 'हो' के साथ हैं, इस लिए सन्देह है कि वे (क्रियाएँ) पूरी हुई हैं कि नही !

भूतकाल में क्रिया की संभावना

'य' प्रत्यय को 'हो गा' सहायक क्रिया मिल जाए, तो क्रिया की निष्पत्ति संभावित होती है। **सन्देह** में इधर-उधर जरा भी झुकाव नहीं होता । क्रिया की निष्पत्ति-अनिष्पत्ति में बराबर सन्देह रहता है। परन्तु **संभावना में**, (निश्चय न होने पर भी) निश्चय की ओर मन जाता है:—

राम ने दूध पी **लिया होगा**
गोविन्द घर **आया होगा**

राम के दूध पीने की और गोविन्द के घर आने की संभावना है और वह 'पीना'-'आना' भूतकाल की चीज है। वर्तमान में भी क्रिया की सन्दिग्धता और संभावना प्रकट होती है, जहाँ 'त' प्रत्यय होता है:—

राम दूध **पीता हो,** तो और कुछ मत देना
गोविन्द घर **आता होगा**; कुछ राह देखो।

यहाँ वर्तमान काल की क्रियाएँ, सन्दिग्ध और संभावित हैं। 'य' से भूतकाल की क्रियाएँ बनती हैं और 'हो'-'होगा' से उन की निष्पत्ति सन्दिग्ध तथा संभावित प्रकट होती है।

बहुवचन में प्रयोग

'य'—प्रत्ययान्त पु०-क्रियाएँ बहुवचन में एकारान्त हो जाती हैं—

लडका **आया**, लड़के **आये**
मैं ने **फल खाया**—मै ने **चार फल खाये**

परन्तु 'ए' में 'य्' सुनाई नही देता; इसलिए उसका लोप भी हो जाता है और तब यों 'ए' मात्र से प्रयोग होते हैं—

लड़के **आए**—मैंने चार फल **खाए**

× × × ×

'आया' का स्त्रीवर्गीय रूप

भूतकाल की 'आया' 'गया' 'खाया' आदि क्रियाओ के स्त्रीवर्ग में ईकारान्त रूप हो जाते हैं:—

आयी, गयी, खायी, लायी

परन्तु 'ई' में 'य्' की श्रुति होती नहीं, इसलिए ('य्' का वैकल्पिक) लोप हो जाता है और प्रयोग होते हैं:—

आई, गई, खाई, लाई

अर्थात् 'आये' 'आए' और 'आयी' 'आई' जैसे उभयविध प्रयोग व्याकरण-दृष्टि से शुद्ध हैं; परन्तु भाषा की प्रकृति ने लोपपक्षीय प्रयोग ('आए'—'आई' आदि) अधिक पसंद किए हैं। हिन्दी की पुरानी कृतियो में **'आए'-'आई'** रूप ही हैं।

कहीं-कही तो नित्य 'लोप 'य्' का होता है:—

किया—**की**, पिया-**पी**, लिया-**ली**

'किया' के आगे 'ई' स्त्रीप्रत्यय आने पर 'आ' तो हट ही जाता है और 'य' का लोप हो जाता है; तब 'इ' और 'ई' मे 'सवर्ण दीर्घ' संधि होकर 'की' आदि रूप:—

किया+ई='की' और पिया+ई='पी'

इन्हीं रूपो मे ये शब्द सर्वत्र चलते हैं। कोई 'किया' का रूप स्त्रीवर्ग मे 'कियी' नही कर सकता, नही चला सकता। इससे भी स्पष्ट है कि लोप-पक्ष प्रबल है। अवधी आदि मे जहाँ भूतकाल के रूप 'आवा'—'लावा' जैसे होते हैं, वहाँ भी स्त्रीवर्गीय रूप—'आई'—'लाई' जैसे ही होते हैं—'आवी'—'लावी' नही। यानी वहाँ 'व' का लोप हो जाता है। बहुवचन मे भी 'व' का लोप होता है—

राकसु **आवा**—राकस **आए**

फलु **पावा**—फल **पाए**

भूत काल के बहुवचन मे वहाँ 'आवे'—'पावे' रूप नही होते। 'आवै' 'पावै' भिन्न क्रियाएँ हैं, भूतकाल की नही हैं।

कहने का मतलब यह कि 'आये' गलत नही, पर 'आए' अधिक व्यापक है। यही स्थिति 'आयी'—'आई' की है। अवधी आदि में केवल लोप-पक्ष गृहीत है। यदि 'आयी'—'आई' आदि मे-से एक ही रूप भाषा मे रखना है, तो 'आई' ही रहे गा। हिन्दी के प्राचीन साहित्य मे भी 'आए'—'आई' जैसे रूप ही गृहीत हैं।

यह इतना—प्रासंगिक आवश्यक ।

यो 'सिद्ध' क्रिया-प्रयोग बनाने वाले **वर्तमान** तथा **भूतकाल** के व्यंजनादि 'त' और 'य' प्रत्ययो का परिचय हुआ । अब आगे 'साध्य' क्रिया-पद बनाने वाले तिङन्त-प्रत्यय भी देखिए, जो स्वर-रूप ही हैं; व्यंजन-स्पर्श से शून्य हैं ।

हिन्दी के तिङन्त-प्रत्यय

तिङन्त प्रत्ययो से हिन्दी मे क्रिया के 'साध्य' रूप बनते है । तिङन्त प्रत्यय स्वर-मात्र हैं । व्यंजनो का योग यहाँ नहीं है । वर्तमान तथा भूतकाल की क्रियाएँ 'सिद्ध' हैं । 'करता—करती' 'किया-की' आदि 'सिद्ध' क्रियाएँ हैं । इनके साथ 'साध्य' (तिङन्त) का इंजन 'हो' या 'हो गा' लग जाने से ही क्रिया की निष्पत्ति सदिग्ध तथा संभावित हो जाती है, अन्यथा नहीं ।

ये 'हो' और 'होगा' आदि 'साध्य' क्रियाएँ है, यह अभी मालूम होगा । 'राम गया' में 'गया' सिद्ध क्रिया को भी तिङन्त का योग सन्दिग्ध-संभावित करके 'साध्य' बना देता है—

'राम गया **हो**, तो······
'राम गया **होगा**' इत्यादि

परन्तु 'साध्य' क्रिया को 'सिद्ध' नही बनाया जा सकता ।

'कृदन्त' या 'सिद्ध' प्रकरण मे बतलाया गया कि 'ह' धातु के रूप 'हैं' तथा 'था' हैं । 'है' रूप तिङन्त होने पर भी निश्चयात्मक है । जो है, सो है ही । उस का अपलाप नहीं । 'था' भी 'ह' का ही कृदन्त (भूतकालिक) रूप है—'ह' से 'त' भूतकालिक प्रत्यय और 'आ' पुंविभक्ति 'हता' । 'अ' का लोप और वर्ण—विपर्यय से—'त् हा' । 'त्' और 'हा' मिलकर 'था' ।

यों 'ह' के वे दो क्रिया-रूप हैं। 'ह' का विकास संस्कृत 'अस्' से है। अस्>अस>अह>'ह'। 'अह' से 'अहै' और 'ह' से 'है' क्रिया। 'इ' तिङन्त प्रत्यय वर्तमान का है। ह+इ=हैं।

'साध्य' क्रिया-रूप हैः—हो, होगा आदि।

'ह' का भी एक क्रिया-रूप 'हो' है—'तुम चतुर हो'। यह 'हो' अस्तित्व बतलाने वाली 'ह' धातु का रूप है—निश्चयात्मक। परन्तु क्रिया के साध्य रूपः—

हो, हो गा आदि

'ह' धातु से नहीं, 'हो' धातु से हैं। 'हो' धातु का विकास संस्कृत 'भू' धातु से है। इस 'हो' से हिन्दी की 'साध्य' क्रियाएँ ही बनती हैं—

'वर्षा हो, तब अन्न हो'

वर्षा का होना और अन्न का होना निश्चित नही है।

'साध्य' क्रियाएँ भविष्यत् काल की ही होती हैं। भविष्यत् ही सन्दिग्ध होता है। वर्तमान तो सामने होता है और भूतकाल देखा-सुना होता है—बीता हुआ। परन्तु भविष्यत् सामने नही! सन्दिग्ध है। इस लिए भविष्यत् की सब क्रियाएँ हिन्दी में तिङन्त हैं। दोनो वर्गों मे समान रूप इनके रहते हैं। 'साध्य' मे वर्ग-भेद क्या? कार्य-सिद्धि वर्ग-भेद पैदा करती है! क्रिया साध्य हो, तो सब एक-रूपः—

वर्षा हो, तो काम बने
अन्न हो, तो काम चले

'वर्षा' की क्रिया भी 'हो' और 'अन्न' की भी 'हो'। कोई रूपान्तर नहीं। वर्षा का होना और अन्न का होना भविष्यत् की बात है। कामना भर है।

मुन्ना **रोए,** तो बताना
मुन्नी **रोए,** तो बताना

मुन्ना-मुन्नी दोनो के लिए 'रोए' क्रिया है। भविष्यत् की चीज है—'साध्य' है।

भविष्यत् क्रिया के दो भेद

भविष्यत् काल की ('साध्य') क्रियाएँ दो वर्गों में बँटी हैं—**'विशेष भविष्यत् और साधारण भविष्यत्।**

जब भविष्यत् काल की क्रिया किसी कामना, विधि, आज्ञा, शाप आदि के साथ हो, तो 'विशेष भविष्यत्' और जब वैसी कोई चीज साथ न हो, तो 'साधारण भविष्यत्', या निर्विशेष भविष्यत्।

पहले हम 'विशेष भविष्यत्' ले गे।

१—विशेष-भविष्यत् क्रियाएँ

विधि, आज्ञा, प्रार्थना, आशीर्वाद, शाप आदि के रूप मे जो भविष्यत् की क्रियाएँ होती हैं, उन्हे 'विशेष-भविष्यत् क्रिया' या **'विशिष्ट साध्य क्रिया'** कहते हैं:—

लड़का जाए, गौ आए, दुर्भावना जले

ये सब 'विशेष भविष्यत्' की क्रियाएँ हैं। 'लड़का जाए' आज्ञा है। भविष्यत् की क्रिया है—'साध्य' है। लड़का न गया है, न जा रहा है। उस को जाने की आज्ञा है। वह अब जाए गा, आज्ञा पा कर। परन्तु क्रिया सन्दिग्ध है। क्या जाने, वह जाए कि न जाए! यह क्रिया की साध्यावस्था तिङन्त-प्रयाग से सूचित होती है।

लड़का **जाए**
लड़की **जाए**

उभयत्र 'जाए' क्रिया है। इसी तरह विधि में क्रिया 'साध्य' होती है। आशीर्वाद मेः—

राम सौ बरस **जिए**
सुशीला सौ बरस **जिए**

भविष्य की चीज है। कामना है। परन्तु क्रिया साध्य है। निश्चित तो है नही कि वे सौ वर्ष जिएँ गे ही !

इसी तरह दुर्भावना प्रकट करने मेः—

वह दुष्ट **मर जाए**, तो अच्छा !
वह दुष्टा **मर** जाए, तो अच्छा !

दोनो जगह 'विशेष भविष्यत्' है। क्रिया (मरना) निश्चित नही है। इसी लिए तिङन्त प्रयोग।

विशेष-भविष्यत् के प्रत्यय

विशेष-भविष्यत् के 'अन्यपुरुष' मे धातु के आगे 'इ' प्रत्यय आता है।

अकारान्त धातुओ के अन्त्य 'अ' से इस प्रत्यय ('इ') की सन्धि हो कर 'ए' सम्मिलित रूप हो जाता है—'राम पढे'—

पढ+इ='पढ़े'। कर+इ='करे'
मुड़+इ='मुडे'। मर+इ='मरे'

अन्य धातुओ से परे प्रत्यय का 'इ' अकेला ही 'ए' बन जाता है,—

जा+इ='जाए'। सो+इ='सोए'
ला+इ='लाए'। रो+इ='रोए'

हो, ले, दे धातुओ के आगे यह 'इ' लुप्त हो जाता है—

वर्षा **हो**, राम पुस्तक **ले**, वह दण्ड **दे**

बहुवचन में क्रिया का अन्त्य स्वर अनुनासिक हो जाता है—

लड़के **पढ़ें**, बहने **आएँ**, छात्र **जाएँ**
समृद्धियाँ **हो**, लड़के पुस्तके **लें**, वे शुल्क **दें**

'मध्यम पुरुष' के एकवचन मे भी प्रत्यय का लोप हो जाता है—

तू जा, तू पढ, तू ले, तू दे

म० पु० बहुवचन में 'उ' प्रत्यय होता है। अकारान्त धातु के अन्त्य 'अ' और प्रत्यय ('उ') में सन्धि हो कर 'ओ' हो जाता है— 'तुम पढ़ो'। इसी तरह—

कर+उ='करो'। चल+उ='चलो'

अन्य धातुओ में यह 'उ' अकेला ही 'ओ' बन जाता है—

जा+उ='जाओ'। खा+उ='खाओ'

सो+उ='सोओ'। हो+उ='होओ'

'ले' और 'दे' धातुओ के 'ए' को 'अ' हो जाता है और फिर 'अ'+'उ'='ओ' रूपः—

तुम यह लो - तुम यह दो

'उत्तम पुरुष' एकवचन मे 'ऊँ' प्रत्यय होता है और अकारान्त धातु के अन्त्य 'अ' का लोप हो जाता है। पढ, कर, गढ, मर आदि धातुओ के रूप पढ्, कर्, गढ्, मर् जैसे हो जाते हैं और तबः—

पढ्+ऊँ=पढूँ। कर्+ऊँ=करूँ। मर्+ऊँ=मरूँ।

क्रिया-रूप बन जाते हैं।

अन्य धातुओ के आगे 'ऊँ' ज्यो का त्यो रहता है—

जाऊँ, सोऊँ, पीऊँ, धोऊँ, होऊँ आदि

'ले'—'दे' धातुओ के स्वर का लोप हो जाता है और व्यंजन प्रत्यय से जा मिलता हैः—

'लूँ' 'दूँ'

'उत्तम पुरुष' के बहुवचन में वे ही रूप होते है, जो 'अन्यपुरुष' के बहुवचन मेंः—

हम पढ़ें, लिखे, जाएँ, सोएँ आदि।

विशेष भविष्यत् के रूपो में 'प्रथमपुरुष' के रूप प्रायः विधि, आज्ञा, आशीर्वाद, शाप, प्रार्थना आदि में आते हैं।

'मध्यमपुरुष' के रूप आज्ञा तथा शाप आदि में काम आते हैं।

'उत्तमपुरुष' के रूप प्रायः प्रश्न या अनुमति आदि में आते हैं।

२—'साधारण भविष्यत्' क्रियाएँ

ऊपर देखा, विशेष-भविष्यत् (विधि, आज्ञा आदि) की सब क्रियाएँ 'साध्य' हैं—अनिश्चित हैं! इसी लिए 'तिङन्त' हैं। दोनो वर्गों में समान रूप रखती हैं। 'सिद्ध' क्रिया 'कृदन्त' होती है—वर्ग-भेद से रूप-भेद करती है! साध्य (भविष्यत्) क्रियाएँ हैं:—

१—'राम सौ वर्ष **जिए**'
२—'राम सौ वर्ष **जिएगा**'

देखिए, कुछ भेद मालूम पडे गा। पहला वाक्य विशेष-भविष्यत् है—आशीर्वाद है। क्रिया एकदम अनिश्चित है—पूरी तरह 'तिङन्त' है। परन्तु दूसरे वाक्य मे निश्चयात्मकता जान पड़ती है—'जिए गा'। कम से कम वक्ता को निश्चय है, राम के सौ वर्ष तक जीने का। यह निश्चयार्थ 'गा' से प्रकट है, जो 'कृदन्त' प्रत्यय है; वर्ग-भेद से रूप-भेद-करता है—

राम **जिए गा**—रमा **जिए गी**

परन्तु भविष्यत् तो सदा सन्दिग्ध है! क्या खबर कौन कितने दिन जिए गा; या न जिए गा! हॉ, वक्ता को क्रिया के होने मे पूरा निश्चय है। इसी लिए 'गा' कृदन्त प्रत्यय है। 'गा' से ही वक्ता का निश्चय प्रकट है।

तो भी, भविष्य सन्दिग्ध है! वक्ता को वैसा निश्चय होने पर भी क्रिया सन्दिग्ध ही है। इसी लिए यहॉ भी धातुओ से असली प्रत्यय

'तिङन्त' ही हैं, जो रूप बदलते नहीं। यानी 'विशेष भविष्यत्' के क्रिया-रूपो में ही (वक्ता का निश्चय प्रकट करने के लिए) 'गा' कृदन्त प्रत्यय जोड़ देते हैं:—

राम **पढ़े**—राम **पढ़े गा**
सीता **पढ़े** – सीता **पढ़े गी**
लड़के **पढ़ें**—लड़के पढ़े ं **गे**
मै **करूँ**, मैं **करूँ गा**, मैं **करूँ गी**
हम **करें**—हम **करें गे**, हम **करें गी**

यहाँ 'मध्यमपुरुष' में प्रत्यय का लोप नहीं होता है—

तू जा—तू **जाए गा**, तू **जाए गी**
तू पढ़—तू **पढ़े गा**. तू **पढ़े गी**

बहुत साफ चीज है। 'हो' विशेष-भविष्यत् की क्रिया कहीं लग कर क्रिया की सन्दिग्धता प्रकट करती है:—

राम **पढ़ता** हो, सीता **पढ़ती हो**

परन्तु निर्विशेष भवियत् की क्रिया ('हो गा') लग कर 'संभावना' प्रकट करती है। यह 'गा' का प्रभाव:—

'राम **पढ़ता हो गा**'—'रमा **खेलती हो गी**'
'राम ने पुस्तक **पढ़ ली हो गी**'—'वह **सोया हो गा**'

वर्तमान तथा भूतकाल की क्रियाएँ 'सिद्ध' होती हैं, परन्तु इंजन तिङन्त का लग जाने से उन मे सन्दिग्धता और संभावना स्पष्ट है। यानी इन के योग से उन की 'सिद्धता' उड़ गई! जिस का इंजन, उसी की गाड़ी!

'इए' तिङन्त प्रत्यय

तिङन्त-वर्ग का एक 'इए' प्रत्यय भी है, जो अनुनय-प्रार्थना आदि

में आता है और 'तुम' की जगह आदरार्थक प्रयुज्यमान 'आप' 'श्रीमान्' 'महाराज' आदि इस के 'कर्ता' होते हैं:—

जाइए, आइए, सोइए, धोइए

अकारान्त धातुओं के अन्त्य 'अ' का लोप हो जाता है:—

पढ़िए, बैठिए, उठिए; आदि

'ले' और 'दे' के 'ए' की जगह 'ई' हो जाता है और बीच में 'ज्' का आगम हो जाता है—

लीजिए, दीजिए

आगम अन्यत्र भी :—

कीजिए, पीजिए

इस के आगे 'गा' लगा देने से दूरगामी (भविष्यत्) प्रार्थना बन जाती है :—

कीजिए गा, कर लीजिए गा, कभी देखिए गा

'कीजिए' आदि भी विशेष-भविष्यत् की क्रियाएँ हैं। उन के आगे 'गा' लगने से दूर का भविष्यत्, जैसे 'य' भूतकाल के प्रत्यय के साथ 'था' भूतकाल की क्रिया रख देने से दूर का भूतकाल ('पूर्ण भूतकाल') बन जाता है—'किया था'।

प्रत्यय का लोप

ऊपर कृदन्त-तिङन्त प्रत्ययों का परिचय दिया गया। अब इस संबन्ध में एक बात और कहने को है और वह यह कि 'य' प्रत्यय का वहाँ लोप हो जाता है, जहाँ धातु अनेक स्वरों की अकारान्त हो; जैसे-'पढ' आदि। राष्ट्रभाषा के मूल रूप (कौरवी, यानी मेरठी-'बोली') में अब भी 'पढ्या' बोलते हैं। राष्ट्रभाषा ने 'य' का लोप करके 'पढ़ा' रूप बना लिया। ब्रजभाषा आदि में 'ओ' के साथ 'य' बना रहता

है—'पढयो'। परन्तु 'पढयो' के स्त्रीवर्गीय रूप मे वहाँ भी लोप हो जाता है—'पढी'।

जब प्रेरणा आदि मे अनेक स्वरोंवाली धातु आकारान्त हो जाती है, तब 'य' का लोप नही होता है :—

पढ़ाया, लिखाया, खिलाया, पिलाया

सकर्मक और अकर्मक क्रियाएँ

'कारक-प्रकरण' मे 'कर्म' कारक का उल्लेख हुआ है। क्रिया से छहो कारको का संबन्ध रहता है, पर उन में 'कर्ता' तथा 'कर्म' क्रिया के सर्वाधिक समीप हैं। 'कर्ता' के बिना तो क्रिया संभव ही नही है। दूसरे दर्जे पर 'कर्म' है। क्रिया का फल कर्ता पर पड़ता है, या कर्म पर; अन्य किसी भी कारक पर नही।

राम सोता है

राम पुस्तक पढता है

ऊपर के वाक्य में 'सोना' क्रिया अकर्मक है। क्रिया (सोने) का फल कर्ता पर है। वही निश्चेष्ट पड़ा है।

दूसरे वाक्य में क्रिया ('पढना') सकर्मक है। कोई चीज पढी जाए गी—पुस्तक, चिट्ठी, रुक्का आदि। जो चीज पढी जाए, वही 'कर्म'। ऊपर 'पुस्तक' कर्म है। परन्तु क्रिया ('पढ़ने') का फल कर्तृगामी है। पढने वाला ही क्रिया ('पढने') का फल (ज्ञान) प्राप्त करता है। पुस्तक ज्यो की त्यो है। परन्तु :—

राम चावल पकाता है

यहाँ क्रिया ('पकाने') का फल 'कर्म' (चावलो) पर है। चावल ही (पक कर) मृदु-क्लिन्न होते हैं। कर्ता ज्यो का त्यो है। और:—

राम रोटी खाता है

यहाँ क्रिया (खाने) का फल उभयगामी है। 'खाने' का अर्थ है कोई चीज दाँतों से चबा कर गले के नीचे उतार लेना। इस क्रिया से 'कर्ता'–'कर्म' दोनो प्रभावित हैं। 'खाने' का फल दोनो पर है। एक के गले चीज उतरी है और एक चीज उतरी है।

बस, इन के अतिरिक्त और किसी कारक पर क्रिया का फल नही पड़ता।

'राम चाकू से फल काटता है'

काटने का फल 'चाकू' पर कुछ भी नहीं। 'फल' पर काटने का फल है। वही कटता है। इसी तरह सम्प्रदान, अपादान और अधि-करण हैं। क्रिया से सब का संबन्ध है, परन्तु वैसी घनिष्ठता नहीं, जैसी कि 'कर्ता' और 'कर्म' से।

सकर्मक क्रिया का अकर्मक प्रयोग

कई बार सकर्मक क्रिया का भी अकर्मक प्रयोग होता है। हमारे पास कोई चीज है, तो यह जरूरी नही कि सदा उस का प्रयोग करे ही। गाड़ी है, घोड़ा है, परन्तु कभी पैदल भी घूमने निकल जाते हैं। इसी तरह सकर्मक क्रिया का भी अकर्मक प्रयोग होता है।

खा-पी लिया न ?

खा चुके कि नहीं ?

'खाना' और 'पीना' सकर्मक क्रियाएँ हैं। कोई चीज खाई जाती है, कोई पी जाती है। परन्तु ऊपर के वाक्यो में दोनो का संयुक्त प्रयोग अकर्मक है—'खा-पी लिया न ?' वक्ता को 'कर्म'–विशेष की जानकारी अभिप्रेत नहीं; इस लिए उस का उल्लेख नही। इसी तरह दूसरे वाक्य में भी कर्म का निर्देश नहीं है। यदि जानकारी की इच्छा हो, तो कहा जाए गा—

खीर खाई ?

तुम ने भी चाय पी ?

'खाने' या 'पीने' मात्र की जिज्ञासा नहीं है; 'खीर खाने' की और 'चाय पीने' की जिज्ञासा है। इसी लिए सकर्मक प्रयोग हैं। 'खीर' और 'चाय' कर्म हैं।

भोजन आप कर चुके ?

यहाँ भी वस्तुतः अकर्मक प्रयोग ही है। 'भोजन करना' क्रिया है। केवल 'करना' यहाँ क्रिया नहीं है।

दूसरा अध्याय

क्रिया की चाल या गति—'वाच्य'

'क्रिया' में स्वतः कोई वर्ग–भेद या वचन–भेद नहीं है। 'क्रिया' एक अमूर्त चीज है। उस की गिनती नहीं हो सकती। उसमें स्त्रीत्व-पुंस्त्व जैसी भी कोई चीज नही। परन्तु भाषा मे जब कोई शब्द बोला जाए गा, तो उस का कोई न कोई रूप हो गा ही। इसी लिए क्रिया-वाचक शब्दो में भी स्त्रीवर्ग-पुंवर्ग और एकवचन-बहुवचन तथा 'पुरुष'-भेद होते हैं, यद्यपि ये सब उस (क्रिया) मे वास्तविक नही हैं।

तो, क्रिया में यह वर्ग-भेद तथा वचन-भेद आदि किस आधार पर होता है ? कोई नियम है, या चाहे जैसा चाहे जहॉ कर दिया जाता है ? नियम है। व्यवस्था है। क्रिया की चाल कभी कर्ता के अनुसार होती है, कभी कर्म के अनुसार और कभी वह इन दोनो को छोड़ एक तीसरा अपना अलग ही मार्ग बनाती-पकड़ती है। यानी क्रिया के वर्ग-वचन आदि कभी कर्ता के अनुसार होते हैं, कभी कर्म के अनुसार और कभी उस की अपनी स्वतंत्र गति-प्रवृत्ति सामने आती है। इसी त्रिविध गति को 'वाच्य' हिन्दी में कहते हैं।

क्रिया के 'वाच्य'-भेद

जब क्रिया के रूप कर्ता के अनुसार होते हैं, तो उसे **'कर्तृवाच्य'** प्रयोग कहते हैं।

कर्म के अनुसार क्रिया मे वचन-भेद आदि हों, तो **'कर्म-वाच्य'** प्रयोग कहलाता है।

यदि क्रिया कर्ता तथा कर्म दोनों से भिन्न मार्ग अपनाती है, तो **'भाववाच्य'** प्रयोग कहा जाता है।

१—**कर्तृवाच्य प्रयोगः** अकर्मक-सकर्मक सभी तरह की क्रियाओं के 'कर्तृवाच्य' प्रयोग होते हैं:—

लड़का सोता है—लड़के सोते है

लड़की सोती है—लड़कियाँ सोती हैं

अकर्मक क्रिया है—'कर्तृवाच्य' प्रयोग है। 'लड़का' कर्ता, तो **'सोता है'** क्रिया और 'लड़के' कर्ता, तो **'सोते हैं'** क्रिया। पुंवर्ग है। कर्ता 'लड़की', तो क्रिया भी स्त्रीवर्गीय—**'सोती है'**।

इसी तरहः—

लड़का सोया है—लड़के सोए हैं

लड़की सोई है—लड़कियाँ सोई हैं

\+ \+ \+

लड़का सोए गा—लड़के सोएँ गे।

लड़की सोए गी—लड़कियाँ सोएँ गी

सर्वत्र 'कर्ता' के अनुसार क्रिया के वचन-वर्ग हैं।

सकर्मक क्रिया के 'कर्तृवाच्य' रूपः—

लड़का रोटी **खाता है—लड़की** भात **खाती है**

लड़के रोटी **खाते हैं—लड़कियाँ** भात **खाती हैं**

सर्वत्र 'कर्ता' के अनुसार क्रिया के वर्ग-वचन हैं। इसी तरह—

लड़का रोटी **खाए गा—लड़की** भात **खाए गी**

भूतकाल में सकर्मक क्रिया 'कर्तृवाच्य' न रहे गी; 'कर्मवाच्य' हो जाए गी।

२—**कर्मवाच्य प्रयोग** : सकर्मक क्रिया जब अपने 'कर्म' कारक के साथ हो, तो **भूतकाल में** 'कर्मवाच्य' रहती है:—

राम ने **रोटी खाई**—लडकी ने **फल खाया**

तू ने **चने चबाए**—मै ने **मीठे फल खाए**

सर्वत्र 'कर्म' के अनुसार क्रिया के वर्ग-वचन हैं। **भूतकाल में सकर्मक** क्रियाएँ ('कर्म' की उपस्थिति मे) कर्तृवाच्य कभी भी न रहे गी। **अकर्मक** क्रियाएँ **भूत** काल मे भी कर्तृवाच्य रहती हैः—

बच्चा रोया—बच्ची रोई

लड़का बैठा था—लड़की बैठी थी

३—भाववाच्य प्रयोग : भूतकाल में **सकर्मक** क्रियाओ के 'भाव-वाच्य' प्रयोग होते हैं और कभी-कभी **अकर्मक क्रिया** के भी। भाववाच्य (कृदन्त) क्रिया सदा पुंवर्ग-एकवचन में रहती है—कर्ता और कर्म चाहे जैसे होः—

मा ने लड़की को **बुलाया**

बहनो ने भाइयो को **बुलाया**

भाइयो ने बहनो को **बुलाया**

बुलाना क्रिया सकर्मक है। भूतकाल में यहाँ सर्वत्र 'भाववाच्य' प्रयोग हैं—पुंवर्ग-एकवचन—'बुलाया'। यह क्रिया की अपनी स्वतंत्र गति है। कर्ता और कर्म चाहे जिस वर्ग के और चाहे जिस वचन के हो, क्रिया सदा पुंवर्ग-एकवचन।

सकर्मक क्रिया के अकर्मक प्रयोग में भूतकाल की सब क्रियाएँ 'भाववाच्य' ही रहती हैं—

सब ने **खा पी लिया**

हम ने भी **खा-पी लिया**

तुम ने भी **खा-पी लिया ?**

मा ने अभी तक **खाया-पिया** नही

अकर्मक क्रिया के भी भाववाच्य प्रयोग होते हैं—

तुम ने बहुत **सो लिया**
हम ने **नहा लिया**

यहाँ 'नहाना' मुख्य क्रिया है और 'लेना' सहायक क्रिया। ऐसी जगह सहायक क्रियाएँ अपना 'अर्थ' छोड़ कर आती हैं। 'हम ने कपड़ा लिया' में जैसे 'कपड़ा' कर्म है, (वह लिया गया है); वैसी कोई चीज 'नहा लिया' में नहीं है। क्रिया की पूर्ण निष्पत्ति और तैयारी का द्योतन भर 'ले' सहायक धातु से यहाँ है। मूलतः और अपने 'अर्थ' के साथ 'लेना' क्रिया सकर्मक है। परन्तु 'नहा लिया' अकर्मक क्रिया है। सकर्मक क्रियाएँ भी कर्म की अनुपस्थिति मे 'भाववाच्य' (भूतकाल में) रहती हैं। 'तुम ने अभी तक **नहाया** नही ?' यहाँ 'नहाना' क्रिया किसी सहायक के बिना भी भाववाच्य है। कर्ता बहुवचन है—'तुम ने'।

तिङन्त क्रियाओं के वाच्य : तिङन्त क्रिया मे वर्ग-भेद नहीं होता। 'पुरुष'-भेद यथास्थान प्रकट होता है। वचन-भेद तो होता ही है।

कर्तृवाच्य तिङन्त क्रिया में कर्ता के अनुसार 'पुरुष'-वचन होते हैं :—

मैं राम को **देखूँ** गा—**हम** राम को **देखें** गे
तुम रमा को **देखो** गे—**रमा** तुम्हे **देखे** गी

'मै—देखूँ' 'तुम देखो'। 'देखूँ'—'देखो' 'उत्तमपुरुष' एकवचन और 'मध्यमपुरुष' बहुवचन रूप कर्ता ('मै' तथा 'तुम') के अनुसार हैं। 'ग' कृदन्त प्रत्यय है और उस के वर्ग-वचन भी कर्ता के ही अनुसार हैं—'गा' 'गी'। यो, ये भविष्यत् काल की क्रियाएँ तिङन्त और कृदन्त के सम्मिश्रण से हैं। दोनो ही अंश 'कर्तृवाच्य' हैं।

केवल तिङन्त क्रिया 'कर्तृवाच्य' देखिए:—

'रमा ने कहा—**मैं जाऊँ ?'**

'राम ने कहा—**मैं जाऊँ ?'**

'मैं जाऊँ' क्रिया तिङन्त है और कर्तृवाच्य है। वर्ग-भेद नहीं, परन्तु 'पुरुष' कर्ता के अनुसार है—'जाऊँ'।

इसी तरह :—

'राम, तुम जाओ'

'रमा, तुम जाओ'

'तुम जाओ' तिङन्त कर्तृवाच्य प्रयोग है।

तिङन्त भाववाच्य : तिङन्त भाववाच्य क्रिया सदा 'अन्यपुरुष'—एकवचन रहती है :—

'आप ये पुस्तके **पढ़िए'**

'आप वेद **पढ़िए'**

'पढना' सकर्मक क्रिया है और 'पढिए' अन्यपुरुष एकवचन प्रयोग है। कर्ता ('आप') तथा कर्म ('पुस्तके') बहुवचन हैं।

'आप जाइए'

कर्ता बहुवचन, क्रिया एकवचन है। इसी तरह—

हमें कुछ नौकर **चाहिए**

कर्ता और कर्म बहुवचन; पर क्रिया एकवचन 'चाहिए'।

हमें पुस्तके पढनी **चाहिए**

तुम्हे अच्छे काम करने **चाहिए**

'चाहिए' सहायक क्रिया विधि प्रकट करती है और भाववाच्य है। मुख्य क्रियाएँ 'पढनी' 'करने' कृदन्त हैं और कर्मवाच्य हैं। **कर्म**

के अनुसार उन में वर्ग-वचन हैं। यह संक्षेप से 'वाच्य'—परिचय हुआ।

अर्थ-विशेष में 'वाच्य'-विशेष

कभी-कभी 'वाच्य'–विशेष अर्थ-विशेष भी द्योतन करता है। क्रिया-निष्पादन में कर्ता की शक्ति-अशक्ति का प्रतिपादन करना हो, तो 'कर्मवाच्य' या 'भाववाच्य' ही क्रिया का प्रयोग होता है, पर साधारण कर्ता-कारक की विभक्ति ('ने') के साथ नहीं, 'से' विभक्ति के साथ :—

यह काम तुम से न हो सके गा
हम से यह काम न होगा
मुझ से ये पत्थर फोड़े न फूटेंगे
इन बहनों से चरखा न कते गा

कर्ता सर्वत्र 'से' विभक्ति के साथ है और कर्म के अनुसार क्रिया के वर्ग-वचन हैं—क्रियाएँ 'कर्मवाच्य' हैं।

इसी तरह 'भाववाच्य' (शक्ति के होने, न होने में) होता है :—

हम से उठा नहीं जाता
तुम से यहाँ बैठा भी नहीं जाता !
हम से वहाँ बैठा न जाए गा

सर्वत्र शक्ति-निषेध है और 'भाववाच्य' क्रिया है—पुंवर्ग-एक-वचन।

तुम से बैठा जाए, तो बैठो

इस संयुक्त वाक्य में पूर्ववाक्य 'भाववाच्य' है—कृदन्त-तिङन्त। 'बैठा' पुंवर्ग-एकवचन (कृदन्त) और 'जाए' 'अन्यपुरुष'–एकवचन

(तिङन्त)। मुख्य क्रिया कृदन्त और सहायक तिङन्त; पर दोनो भाव-वाच्य। उत्तर वाक्य में क्रिया 'बैठो' कर्तृवाच्य है—कर्ता (तुम) के अनुसार, म० पु० बहुवचन। पूर्ववाक्य से (निर्विभक्तिक) कर्ता ('तुम' मात्र) यहाँ आ जाए गा।

विशेष अर्थ का द्योतन करने के लिए ही ऐसी कृदन्त क्रियाएँ आती हैं :—

हमें पूरी **पुस्तक पढनी है**
तुम्हें यह **काम करना है**
उन्हे वह **काम** तो **करना ही है**
इसे वे **सब काम करने हैं**

कृदन्त-तिडन्त प्रयोग हैं और 'अवश्यकर्तव्यता' या विवशता सूचित है। जो काम अवश्य करना है, या जो करना ही पडे गा, उसे 'हुआ' ही समझना चाहिए। इसी लिए 'सिद्धवत्' (कृदन्त) प्रयोग हैं। ऐसे लाक्षणिक प्रयोग होते हैं—

'कब आए ?'
'चला ही आ रहा हूँ !'

'चला ही आ रहा हूँ' 'प्रवर्तमान'-प्रयोग है, जब कि क्रिया सम्पन्न हो चुकी है—आ चुका है। मतलब यह कि अभी आए देर नहीं हुई है। आना हो चुका है, भूतकाल की चीज है; परन्तु वर्तमान के एकदम निकट है। इस लिए कह दिया जाता है—'आ ही रहा हूँ'।

इसी तरह—

'कब जाओ गे ?'

उत्तर में—

'जा ही रहा हूँ'

कह देते हैं। यानी भविष्यत् का जाना वर्तमान के अति निकट है—जाने में देर बिलकुल नहीं। यह द्योतन करने के लिए 'सिद्धवत्' प्रयोग–'जा ही रहा हूँ।' इसी तरह 'पुस्तक पढ़नी है' आदि में क्रिया का पूर्वांश 'सिद्धवत्' है—कृदन्त।

तीसरा अध्याय

क्रिया के द्विकर्तृक प्रयोग—'प्रेरणा'

कभी-कभी एक ही क्रिया के दो 'कर्ता' हो जाते हैं।

'रामू मिट्टी उठाता है'

यहाँ 'रामू' कर्ता है। वही मिट्टी उठाने का काम कर रहा है। परन्तुः—

'रामू नौकर से मिट्टी **उठवाता** है'

यहाँ 'उठवाता है' क्रिया का (शब्द-प्रयोग में) 'कर्ता' 'रामू' है; परन्तु मिट्टी उठाने का काम तो 'नौकर' ही कर रहा है न ? तब असली 'कर्ता' तो 'नौकर' ही हुआ न ? जो काम करे, वही 'कर्ता'। परन्तु 'नौकर' भी तभी मिट्टी उठा रहा है, जब 'रामू' उस से 'उठवाता' है। यदि वह न उठवाए, तब 'नौकर' थोड़े ही उठाए गा ! यों मिट्टी के 'उठाने'—'उठवाने' मे 'नौकर' तथा 'रामू' दोनो ही 'कर्ता' हुए। जो मिट्टी उठा रहा है, वह असली, या 'मुख्य' कर्ता और जो दाम दे कर उस से वह काम ले रहा है—मिट्टी उठाने को प्रेरित कर रहा है, वह 'प्रेरक कर्ता'। प्रेरक उसे काम में प्रयुक्त करता है, इस लिए 'प्रयोजक कर्ता' भी उसे कहते हैं। यानी ऊपर के वाक्य मे 'रामू' प्रेरक या 'प्रयोजक' कर्ता है और 'नौकर' मुख्य कर्ता है, जिसे 'प्रयोज्य'-कर्ता भी कहते हैं। असली कर्ता दब जाता है और प्रयोजक सामने आ जाता है ! उसी के अनुसार 'क्रिया' का रूप रहता है। बात भी ठीक है। मालिक जैसा चाहे गा, वैसा ही मकान कारीगर बनाए गा। मकान

बनाने की क्रिया मालिक के अनुसार सम्पन्न हो गी। कारीगर ही सब कुछ बनाए गा, वही बनाने का कर्ता-धर्ता है, पर उस की 'क्रिया' मालिक के अनुसार ही रहे गी। भाषा में भी यही है। क्रिया की स्थिति–प्रवृत्ति 'प्रयोजक' कर्ता के अनुसार देखी जाती है—

'**मालकिन** नौकर से मिट्टी **उठवाती है**'
'**माली** अपनी मालिन से माला **बनवाता** है'
'**लड़के** अपनी मा से खीर **बनवाते हैं**'

सर्वत्र प्रेरक–कर्ता के अनुसार ही क्रिया के वर्ग-वचन हैं। मुख्य कर्ता 'से' विभक्ति के साथ है।

कभी मुख्य कर्ता 'को' विभक्ति के साथ भी आता है और ऐसी स्थिति में प्रायः यह सूचित होता है कि क्रिया की प्रवृत्ति मुख्य कर्ता के **प्रत्यक्ष हित** मे है:—

'मा **बच्चे को** दूध पिलाती है'
'बच्चे **मा को** लड्डू खिलाते हैं'

क्रिया प्रेरक-कर्ता के अनुसार है। ठीक भी है। मा जैसे चाहे गी, दूध पिलाए गी। परन्तु असली कर्ता तो 'बच्चा' है। वही 'पीने' की क्रिया करे गा। वह (बच्चा) 'को' विभक्ति के साथ है। 'को' विभक्ति प्रायः 'कर्म'-कारक में लगती है और ऊपर के वाक्यो की बनावट ऐसी है कि 'बच्चे को' और 'मा को' कर्म-कारक–जैसे ही जान पड़ते हैं; इस लिए इसे 'गौण कर्म' भी कह देते हैं। असली या 'मुख्य' कर्म है 'दूध' और 'लड्डू'—पीने और खाने की चीजे। परन्तु 'मुख्य' कर्ता में 'को' लगाने से वे भी कर्म–जैसे ही जान पड़ते हैं। इस लिए उन्हें 'गौण कर्म' कह देते हैं—'नकली कर्म'। वस्तुतः वे कर्ता हैं—'मुख्य कर्ता'। वे ही क्रिया का प्रत्यक्ष सम्पादन करते हैं। बच्चा ही दूध पीता है—मा के पिलाने पर।

ऊपर 'कर्तृवाच्य' क्रिया के उदाहरण है। भूतकाल में 'कर्मवाच्य' क्रिया हो गी। क्रिया कर्म के अनुसार रहे गी। मुख्य कर्ता में 'कर्तृ-वाच्य' की ही तरह 'से' या 'को' विभक्ति लगे गी ही:—

'रामू ने नौकर से **मिट्टी उठवाई**'
'बहनो ने भाइयो से **साग मँगवाया**'
'हम ने तुम से अच्छा **कागज़ मँगवाया था**'

और—

'मा ने बच्चे को **रोटी खिलाई**'
'बच्चो ने मा को **लड्डू खिलाया**'
'तुम ने हमे **भाँग** क्यो **पिला दी** ?'

अकर्मक क्रिया भी प्रेरणा मे सकर्मक-सी हो जाती है। कारण यह कि मुख्य कर्ता 'कर्म' जैसा जान पड़ता है—'गौण कर्म' बन जाता है—

मा **बच्चे को** सुलाती है
बहनें **भाई को** रुलाती नही है

सकर्मक क्रिया जब प्रेरणा में आए गी, तो भूतकाल मे 'कर्मवाच्य' हो गी ही। 'मुख्य' कर्म के अनुसार क्रिया रहे गी, नकली के अनुसार न रहे गी:—

'मा ने बच्चो को **बताशे खिलाए**'
'बहनो ने भाइयो को **शर्बत पिलाया**'

जब मूल अकर्मक क्रिया प्रेरणा में आ कर नकली सकर्मक हो जाती है, तो इस 'नकली कर्म' के अनुसार क्रिया नहीं चलती—स्वतंत्र गति से 'भाववाच्य' रूप रखती है:—

'बहनो ने भाइयो को **बैठाया**'
'भाइयो ने बहनो को **बैठाया**'
'मा ने लड़की को **बैठाया**'

जो बैठने वाले हैं, वस्तुतः कर्ता हैं—मुख्य कर्ता। परन्तु प्रेरणा में कर्म-से जान पड़ते हैं—'गौण कर्म' कहलाते हैं। क्रिया इन 'गौण' कर्मों का अनुगमन नहीं करती; यानी—

'बहनो ने **भाई बुलाए**'
'भाइयो ने **बहनें बुलाईं**'

यों 'कर्मवाच्य' प्रयोग न होंगे। हो कैसे, जब असली कर्म है ही नहीं! अवधी आदि मे जरूर ऐसी जगह 'कर्मवाच्य' प्रयोग हो जाते हैं—

"तबहि राउ प्रिय नारि बोलाईं;
कौसल्यादि सकल चलि आईं।"

इस का कारण यह है कि अवधी में 'ने' विभक्ति नही है। फलतः वहाँ भाववाच्य क्रिया ऐसी जगह बन नहीं सकती और भूतकाल में प्रेरणा का रूप 'प्रेरक कर्ता' (राउ) के अनुसार हो गा नही। परिशेषतः वहाँ 'गौण कर्म' के ही अनुसार रूप होते हैं। राष्ट्रभाषा में भाववाच्य रूप ऐसी जगह चलता है।

चौथा अध्याय

क्रिया के अकर्तृक प्रयोग—'कर्मकर्तृक' आदि

साधारण क्रिया प्रेरणा मे 'द्विकर्तृक' हो जाती है। इस के विपरीत, ऐसे भी प्रयोग होते हैं, जब मुख्य कर्ता भी नही रहता—क्रिया का 'अकर्तृक' प्रयोग होता है। शब्द-प्रयोग ही 'अकर्तृक' होता है, कर्ता तो कोई न कोई हो गा ही। बिना 'कर्ता' के कोई क्रिया हो गी ही कैसे? परन्तु वक्ता कभी कभी 'कर्ता' कारक का प्रयोग नही करते! ऐसे प्रयोग प्रायः सकर्मक क्रियाओ के होते हैं; क्वचित् अकर्मक के भी। प्रयोग होते हैं:—

पेड़ कट रहे हैं
पेडे बँट रहे है
खीर पक रही है

परन्तु पेड़ स्वयं कट नहीं सकते, पेडे बँट नही सकते और खीर पक नहीं सकती; जब तक कोई काटने वाला, बाँटने वाला और पकाने वाला न हो। परन्तु वक्ता को 'कर्ता' की विवक्षा नही—वह 'कर्ता'-पद बोलना नही चाहता। इस लिए कर्ता के बिना ही ऊपर प्रयोग हैं। पेड़, पेडे और खीर वस्तुतः 'कर्म' कारक हैं। वे काटी जाने वाली, बाँटी जाने वाली और पकाई जाने वाली चीजे हैं। तो भी, ऊपर के वाक्यो में उन का प्रयोग 'कर्ता' कारक की तरह है। 'गौण कर्ता' नाम इन का ठीक, जैसे 'प्रेरणा' में 'मुख्य' कर्ता को 'गौण कर्म' कहते हैं। वहाँ कर्ता 'कर्म' जैसा बन जाता है, यहाँ 'कर्म' कर्ता—जैसा लगता है। इसी के अनुसार क्रिया के वर्ण-वचन रहे गे:—

भात पकता है—पक रहा है
दाल पकती है—पक रही है
चावल पकते हैं—पक रहे हैं

कर्म कर्ता के बाने मे है। तब 'कर्म' के बाने में कौन रहे ? जगह खाली है ! और इसी लिए भूतकाल मे भी 'कर्तृवाच्य' प्रयोग, इसी 'गौण कर्ता' के अनुसारः—

'भात पका था'—**'दाल पकी** थी'
'चावल पके थे'—**'सेवइयाँ पकी** थीं'

शब्दो की बनावट देखी ? प्रेरणा में दो कर्ता हो जाते हैं—मुख्य और प्रेरक। इस लिए क्रियापद भी कुछ विकसित हो जाता है—अन्त्य स्वर दीर्घ हो जाता है—

पढता है—**पढ़ाता** है
करता है—**कराता** है
बैठता है—**बैठाता** है
उठता है—**उठाता** है

परन्तु यहाँ तो मुख्य कर्ता भी अनुपस्थित रहता है। तब क्रिया-पद कुछ सिकुड-सिमट जाता है। इस का प्रथम स्वर (यदि मूलतः दीर्घ हो, तो) ह्रस्व हो जाता है—

मूल प्रयोग—अकर्तृक प्रयोग
काटना—**कटना**
बाँटना—**बँटना**
छाँटना—छँटना

पेड़ कट रहे हैं, पेडे बँट रहे हैं, बाल छँट रहे है। कुछ क्रियाओ मे स्वर ह्रस्व होने के साथ-साथ 'ल' का आगम भी हो जाता है—

कपडे **सिल** रहे हैं

परन्तु :—

‘फूल **खिल** रहे हैं’

यहाँ ‘खिलना’ मूल क्रिया है। फूल स्वयं खिलते हैं—‘कर्ता’ कारक है। ‘धूप से फूल खिलते हैं’। यहाँ ‘धूप’ हेतु है—खिलने मे। परन्तु कपडे स्वयं नही सिल सकते।

प्रेरणा मे भी ‘ल’ का आगम होता है:—

“राम दर्जी से कपडे **सिलाता** है”

अकर्तृक—“राम के कपडे खूब **सिलते** हैं।”

परन्तु कही भेद भी पड जाता है :—

राम मोहन को पानी **पिलाता** है
मा बच्चे को खीर **खिलाती** है

यहाँ ‘पीना’–‘खाना’ के प्रेरणा-प्रयोग ‘पिलाना’–‘खिलाना’ में ‘ल’ का आगम है। परन्तु ‘खाना’ ‘पीना’ के अकर्तृक प्रयोग ‘ल’ के आगम से न हो गे। कोई नही बोलता :—

पानी पिल रहा है

या—

खीर खिल रही है!

बोलते हे—

पानी पिया जा रहा है
खीर खाई जा रही है

यो संयुक्त क्रिया के रूप मे अकर्तृक प्रयोग होते हैं—‘जा’ आदि धातुओ के सहयोग से। कारण कदाचित् यह है कि ‘पिल’ और ‘खिल’ अलग स्वतंत्र धातु-रूप हैं, जिन के प्रयोग—

भीड़ पिल पड़ी
फूल खिल उठे

यो साधारण रूप से होते हैं। इन 'पिल' 'खिल' मूल धातुओं में और 'पीना'-'खाना' के अकर्तृक प्रयोगो मे भेद रखने के लिए वैसी व्यवस्था है।

उच्चारण आदि का भी ध्यान रखा गया है :—

राम गेहूँ बोता है

इस की प्रेरणा:—

राम नौकर से गेहूँ **बुवाता** है

परन्तु 'धोता है' की प्रेरणा 'धुलाता है'। 'राम कपड़े धोता है' और 'राम धोबी से कपडे धुलाता है। 'धोना'–'**धुलाना**'। परन्तु 'बोना' से 'बुलाना' नही हुआ; इस लिए कि 'बुलाना' एक पृथक् क्रिया है। उस मे भ्रम न हो, इस लिए 'बोना' की प्रेरणा में 'ल' का आगम कर के 'बुलाना' रूप नहीं, वरन 'व' का आगम कर के 'बुवाना' रूप गृहीत है।

परन्तु अकर्तृक प्रयोग में 'गेहूँ बुवते हैं' बोलने मे अच्छा नहीं लगता। 'ब' का ओष्ठ स्थान, 'उ' का ओष्ठ स्थान और 'व' का भी (दन्त के साथ) ओष्ठ स्थान ! यो एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले तीन वर्ण नैरन्तर्य से एक जगह बोलने में भले नही लगते। इस लिए 'बोता है' का अकर्तृक प्रयोग 'बुवता है' नही होता, वरन संयुक्त क्रिया के रूप मे—

ईख बोई जा रही है
गेहूँ बोए जा रहे हैं

'बुवाता है' में दीर्घ 'वा' कुछ स्वारस्य पैदा कर देता है; परन्तु ह्रस्व 'व' जमता नही है—'बुवता' !

यो अकर्तृक प्रयोग होते हैं। सर्वत्र 'कर्म' कारक कर्ता के रूप हैं। कर्म कर्ता कारक के रूप में हैं, इस लिए इन्हे 'कर्मकर्तृक प्रयोग' कहते हैं। कर्म ही कर्ता के रूप में हैं।

इसी तरह अकर्तृक प्रयोग 'करणकर्तृक' 'अपादानकर्तृक' और 'अधिकरणकर्तृक' भी होते हैं !

'करण-कर्तृक' प्रयोग :—

'यह मशीन दिन भर में दस कपडे सी देती है'
'यह चाकू कलम खूब बनाता है'
'इतना ईंधन मन भर चावल पका दे गा'

ऊपर सकर्मक क्रियाएँ हैं। अकर्तृक प्रयोग हैं। सीने वाले का, बनाने वाले का और पकाने वाले का उल्लेख नहीं है। परन्तु 'कर्म' कारक 'अपने' रूप में हैं। यहाँ 'करण'—कारक कर्ता-कारक के रूप में हैं। मशीन से कोई कपडे सीता है, मशीन स्वयं ही नही सी देती। परन्तु कर्ता की अविवक्षा में ऐसे अकर्तृक ('करण-कर्तृक') प्रयोग होते हैं।

'झरने से जल झर-निकल रहा है'

इसे कह देते हैं :—

'झरना चल रहा है'

'अपादान' का कर्ता की तरह प्रयोग है। कर्ता ('जल') अविवक्षित है। यह 'अपादानकर्तृक' प्रयोग हुआ, 'अकर्तृक' अवस्था का।

'अधिकरणकर्तृक' :—

'यह बटलोही सेर भर चावल पकाती है'
'यह रास्ता खूब चलता है'

पहला वाक्य सकर्मक है, दूसरा 'अकर्मक'। अकर्मक का 'अकर्तृक' प्रयोग इस तरह का क्वचित् ही मिलता है। 'बटलोही' अधिकरण है। उस मे कोई चावल पकाएगा, तब काम चले गा। बटलोही स्वयं ही चावल न पका दे गी। परन्तु कर्ता की अविवक्षा है। अधिकरण का ही कर्ता की तरह प्रयोग है। उसी के अनुसार क्रिया के वर्ण-वचन हैं। इस लिए यह प्रयोग 'अधिकरणकर्तृक' हुआ, सकर्मक। कर्म 'चावल' अपने ('कर्म कारक' के) रूप में है।

'चलना' यहाँ अकर्मक क्रिया है। 'रास्ते मे लोग खूब चलते हैं'। कर्ता की अविवक्षा में अधिकरण ('रास्ता') ही कर्ता की तरह बोल दिया जाता है—

रास्ता खूब चलता है
सड़क खूब चलती है

'रास्ता' तथा 'सड़क' के अनुसार क्रियाएँ हैं—'चलता है'—'चलती है'।

यों क्रियाओ के 'अकर्तृक' प्रयोग बहुत स्पष्ट और सरल हैं। अधिक विस्तार अपेक्षित नही, आवश्यक नहीं।

सकर्तृक 'कर्मवाच्य' क्रियाओ की स्थिति भिन्न हैं। वहाँ 'कर्ता' सामने रहता है, परन्तु क्रिया की स्थिति-गति कर्म के अनुसार रहती है—

राम ने रोटी खाई—रमा ने फल खाया
मुझ से रोटी नहीं खाई जाती-रमा से चने नहीं पिसते

रामू से ये लकड़ियाँ न फटेंगी–रमा से मसाला भी नहीं पिसता

'कर्ता' कारक सर्वत्र 'ने' या 'से' विभक्ति के साथ हैं। परन्तु 'कर्मकर्तृक' प्रयोग में कर्ता सामने रहता ही नहीं है—

'रोटी खाई जा रही है क्या ?' 'नहीं, **फल खाए जा** रहे हैं !'

'मसाला पिस रहा है'—'**लकड़ियाँ फट रही** हैं।'

यहाँ 'कर्म' कर्ता की तरह है। 'करणकर्तृक' आदि मे कर्म अपनी जगह रहता है।

पाँचवाँ अध्याय

'पूर्वकालिक' और 'क्रियार्थक' क्रियाएँ

'आता है' 'आए गा' आदि पूर्ण (निराकाङ्क्ष) क्रियाएँ हैं। 'राम आता है' कहने से वाक्य पूरा हो जाता है। परन्तु कुछ क्रियाएँ साकाङ्क्ष भी देखी जाती हैं, जो वाक्य पूरा नही करती। 'करता है' 'आता है' आदि (पूर्ण) क्रियाओ को ही 'विधेय पद' कहते हैं। परन्तुः—

राम **पढ़कर**

राम **पढ़ने**

इस तरह 'पढ कर' 'आकर' तथा 'पढने' 'आने'—'जाने' आदि क्रिया के साकाङ्क्ष रूप हैं। इन से वाक्य तो पूरा नही होता; पर हैं ये भी क्रियाएँ ही। इनकी भी स्थिति देखनी चाहिए।

पूर्वकालिक क्रिया

'विधेय क्रिया' को ही 'पूर्ण क्रिया' और 'समापिका' क्रिया भी कहते हैं, क्योकि वह वाक्य पूर्ण करती है, आकाङ्क्षा समाप्त करती है। उस से पहले होने वाली क्रिया 'पूर्वकालिक क्रिया' कहलाती है; यदि वह साकाङ्क्ष हो:—

राम **आकर** पढ़ेगा

सुशीला **पढकर** आए गी

पहले वाक्य में 'आना' और दूसरे में 'पढ़ना' पूर्वकालिक क्रियाएँ हैं—'आ कर' 'पढ़ कर'। आए गा, तब पढ़ेगा। पढ़े गी, तब आए

गी। 'आ कर' 'पढ कर' कहने से आकाक्षा रहती है—'क्या' ? 'पढ़ कर' क्या हो गा ? सो, ये पूर्वकालिक क्रियाएँ हैं; जो कृदन्त 'कर' प्रत्यय से बनती हैं। अकर्मक-सकर्मक सभी धातुओ से पूर्वकालिक क्रियाएँ बनती हैः—

उठ कर, बैठ कर, सो कर, रो कर
पढ कर, खा कर पी कर, धो कर

'कर' प्रत्यय को प्रकृति (धातु) से हटाकर लिखने की चाल है। सभी धातुओ से 'कर' प्रत्यय होता है—प्रेरणा में भी और अकर्तृक प्रयोग में भी—

मै छात्रो को **पढ़ा कर** जाऊँ गा
यही बटलोही चावल **पका कर** दाल भी पका दे गी।

'कर' धातु से 'के' प्रत्यय होता हैः—

'यह काम **करके** कही जाना'

अन्य सब धातुओ से 'कर' होता है। यदि साकाक्षता न हो, तो 'पूर्वकालिक' क्रिया न कही जाए गी—

राम रोटी खाएगा, तब स्कूल जाएगा

रोटी 'खाना' पूर्व काल में है, तब स्कूल 'जाना'। परन्तु तो भी 'खाए गा' क्रिया वाक्य पूरा कर देती है—'राम रोटी खाए गा'। 'तब' अव्यय से दो वाक्य जुडे हुए हैं और उन में (उन की क्रियाओ मे) पौर्वापर्य भी है। परन्तु 'राम रोटी खा कर' कहने से वाक्य पूरा नही होता। 'राम रोटी खाए गा' पूरा वाक्य है। इस लिए 'खाए गा' क्रिया को 'पूर्वकालिक' क्रिया नही कहते। पूर्वापर-प्रयोग से ही वहाँ पौर्वापर्य प्रकट होता हैः—

राम स्कूल जाए गा,
फिर रोटी खाए गा

अब 'जाना' पूर्वकाल की क्रिया है। परन्तु 'कर' प्रत्यय लग कर बनने वाली क्रियाएँ सदा ही 'पूर्वकालिक' रूप मे रहें गी, चाहे जहाँ और चाहे जैसे (आगे-पीछे) प्रयोग कर दो :—

राम **चिट्ठी लिख कर रोटी खाए गा**

राम **रोटी खाए गा चिट्ठी लिख** कर

चिट्ठी लिखने पर जोर देने के लिए पर-प्रयोग है, पर तो भी 'लिख कर' पूर्वकालिक क्रिया है। पहले चिट्ठी लिखे गा, तब रोटी खाए गा।

क्रियार्थक क्रिया

विधेय या 'पूर्ण' क्रिया जिस क्रिया के अर्थ होती है, उसे 'क्रियार्थक क्रिया' कहते है :—

राम विद्या **पढ़ने** काशी जाए गा

मै खीर **खाने** तेरे घर आऊँ गा

'जाए गा' और 'आऊँ गा' पूर्ण क्रियाएँ हैं। परन्तु काशी जाना है किस लिए? विद्या 'पढने' के लिए। इसी तरह दूसरे वाक्य मे क्रिया ('आऊँ गा') 'खाने' के लिए है। काशी जाए गा, तब विद्या पढ़े गा और घर पहुँचे गा, तब खीर खाए गा। पूर्वकालिक क्रिया पहले की चीज है और पूर्ण निष्पत्ति प्रकट करती है—'चिट्ठी लिख कर रोटी खाए गा'। परन्तु क्रियार्थक क्रिया आगे की चीज है—निष्पन्न होने को है। पहले काशी जाए गा, तब पढे गा—'जा कर पढे गा' पूर्वकालिक क्रिया। और, पढने के लिए जाना है—**पढ़ने** जाना है। यह 'पढने' क्रियार्थक क्रिया है।

'कर' 'के' की तरह यह (क्रियार्थक क्रिया का) 'ने' प्रत्यय भी सभी धातुओ से होता है और यह भी सदा इसी रूप मे रहता है। इसी लिए इन्हे 'कृदन्त अव्यय' कहते हैं। यह सब 'अव्यय प्रकरण' में ज्ञात हो गा। 'पढ़ कर' तथा 'पढने' सदा अव्यय (एकरूप) रहते हैं।

सो, 'क्रियार्थक क्रिया' बनाने में 'ने' प्रत्यय लगता है और प्रकृति (धातु) से सटा कर इस का प्रयोग होता है :—

राम पढ़ने—पढ़ाने गया है
कपडे **सीने** राम गया है
कपडे **सिलने** दर्जी को गए हैं

'कर' 'के' तथा 'ने' प्रत्यय सदा एकरस रहते हैं और इन के आगे किसी शब्द के लाने की जरूरत नही पडती।

'रुपया **कमाने के** लिए लोग सब कुछ करते हैं'
'रुपया **कमाने के** लिए उस ने सब कुछ किया'

यहाँ 'ने' प्रत्यय नही है। 'रुपया कमाना' के आगे 'लिए' अव्यय है। 'लिए' अव्यय 'तदर्थ' में आता है। अव्यय के योग में 'के' संबन्ध-विभक्ति सदा लगती है और उस के कारण 'आ' 'ए' हो जाता है—'कमाने के लिए'। 'राम विद्या **पढ़ने** काशी जाए गा' में 'पढने' क्रियार्थक क्रिया 'ने' प्रत्यय से है। इस 'ने' के आगे 'लिए' जैसा कोई अव्यय न आए गा।

ये पूर्वकालिक तथा क्रियार्थक क्रियाएँ सभी धातुओ के सभी तरह के प्रयोगो मे काम आती हैं—सभी कालो मे भी। यही नही, 'नाम-धातुओ' से भी 'कर' तथा 'ने' प्रत्यय होते हैं और 'पूर्वकालिक' तथा 'क्रियार्थक' क्रियाएँ बनती हैं। 'धातु' तो देख ही लिए, 'नामधातु' अगले अध्याय मे देखिए।

छठा अध्याय

'नामधातु'—प्रकरण

'नाम' पीछे आ चुके। वे ही 'नाम', जिन्हें लोक-व्यवहार में भी सब 'नाम' ही कहते हैं। व्याकरण में 'नाम' को 'संज्ञा' भी कहते हैं। 'धातु' भी देख लिए, जिन से विविध 'क्रिया-पद' बनते हैं। लोक-व्यवहार में 'धातु' पीतल-ताँबा आदि, जिन से तरह-तरह के बर्तन बनते हैं। यो दोनो तत्त्व अलग-अलग है। यह 'नामधातु' प्रकरण है। 'नाम' और 'धातुओं' का वर्णन यहाँ न हो गा ; बताया यह जाए गा कि कभी कोई 'नाम' धातु भी बन जाता है। ऐसी (नाम से बनी) धातु को 'नामधातु' कहते हैं। इन नामधातुओं से भी सभी तरह के 'क्रियापद' बनते हैं; जैसे कि मूल धातुओं से—'सिद्ध' और 'साध्य' क्रियाएँ, पूर्वकालिक क्रियाएँ, क्रियार्थक क्रियाएँ, प्रेरणा-क्रियाएँ और 'अकर्तृक' क्रियाएँ आदि। सब कुछ उसी तरह। 'चपत' एक नाम है—संज्ञा है। चपत मारना—'चपतियाना' क्रिया है। 'चपत' नाम से 'चपतिया' नामधातु और इस से फिर विविध प्रत्यय हो कर विविध क्रियाएँ—

कल्लू को ठेकेदार चपतियाता भी है

कल्लू के चपत मारता है—'कल्लू को चपतियाता है' यो सकर्मक क्रिया। ठेकेदार ने कल्लू को चपतियाया भी था' भूतकाल। 'चपतियाए गा' भविष्यत्। और:—

'चपतिया कर' पूर्वकालिक क्रिया

'चपतियाने' क्रियार्थक क्रिया

'खट खट' एक अव्यक्त ध्वनि है। जो ध्वनि (शब्द) लिपि में ज्यों की त्यों न बँध सके, वर्णों में जो व्यक्त न की जा सके, उसे 'अव्यक्त ध्वनि' कहते हैं। इस के लिए कोई शब्द मिलता-जुलता कल्पित कर लिया जाता है। उसे ही 'अव्यक्त ध्वनि' कहते हैं। पशुपक्षियों का बोलना या बेजान (जड़) पदार्थों का आपस में या किसी अन्य जड-चेतन पदार्थ से टकरा कर जो शब्द होता है, वह 'अव्यक्त ध्वनि' है। 'खट खट' 'भड़ भड' 'सर सर' 'झर झर' आदि शब्द उन के लिए कल्पित कर रखे गए हैं। 'राम किवाड 'खट खट' कर रहा है। यहाँ 'खट खट' अव्यक्त ध्वनि है और कर्म-कारक के रूप में प्रयुक्त है। इस 'खटखट' से नामधातु 'खटखटा' बनी और उस से फिर विविध क्रिया-पदः—

राम किवाड़ **खटखटाता है**
राम ने किवाड़ **खटखटाए थे**
राम किवाड़ **खटखटाए गा**
राम ने किवाड **खटखटा कर** हमें जगा दिया
राम किवाड़ **खटखटाने** जा रहा था कि गिर पड़ा।

प्रेरणा में 'खट' आदि की द्विरुक्ति नहीं होती, 'क' प्रत्यय आ जाता है और आगे प्रेरणार्थक 'वा' प्रत्ययः—

राम नौकर से किवाड़ **खटकवाता है**

अकर्तृक प्रयोगः—

किवाड़ **खटकते हैं**, तब मैं जाग पड़ता हूँ

यानी 'खटखटा' धातु से प्रेरणा और अकर्तृक प्रयोग नहीं होते, 'खटका' नामधातु से होते हैं। 'खट' ध्वनि से दो नामधातु 'खटखटा' और 'खटका'—

राम किवाड़ **खटकाता है**

इसी 'खटका' से प्रेरणा और 'अकर्तृक' प्रयोग भी।

ऊपर के प्रयोगो से निष्कर्ष यह निकला कि किसी 'नाम' के आगे 'आ' धातुक प्रत्यय कर देने से 'नामधातु' बन जाती है। 'खट' शब्द को विरुक्त कर के:—

खटखट+आ='**खटखटा**' नामधातु और 'खट' शब्द से स्वार्थिक 'क' प्रत्यय कर के :—

खटक+आ='**खटका**' नामधातु

प्रयोग:—

'राम किवाड़ **खटखटाता** है'

और—

'राम किवाड **खटकाता** है'

'माटी' एक नाम है। 'मिट्टी' को ही पूरब मे 'माटी' कहते हैं। ऐसे शब्दो के आगे जब धातुक 'आ' प्रत्यय आता है, तो प्रकृति (संज्ञा) के 'ई' को 'इय्' हो जाता है।

माटी रगड कर कोई चीज धोना—'मटियाना'।

माटी+आ='मटिया' नामधातु बन गई।

'**राम हाथ मटियाता है**'—राम मिट्टी रगड कर हाथ धोता है। किसी को लाठी से मारना—'लठियाना'।

परन्तु:—

'राम टोकरी उधर **सरकाता** है'

यहाँ 'सरकाना' नामधातु नहीं है; 'सरकना' की 'प्रेरणा' है। 'सरकना' एक क्रिया है। उसी में प्रेरणार्थक 'आ' प्रत्यय लग कर 'सरकाना' क्रिया है। हाँ, 'थपथपाना' अवश्य नामधातु है। 'थप थप' करना 'थपथपाना'। 'थप' की द्विरुक्ति और आगे धातुक प्रत्यय 'आ'। 'सरकाना' मूल क्रिया भी हो सकती है।

'पिनकना' एक क्रिया है—अफीम के नशे में ऊँघना ! इसी से 'पीनक' है भाववाचक संज्ञा, जैसे 'समझना' से 'समझ'।

इसे उलटा यों न समझ लेना चाहिए कि–'पीनक' एक संज्ञा है और उस से 'पिनकना' नामधातु ! पिनकने से 'पीनक' है। यानी 'पीनक' धातुज (कृदन्त) संज्ञा है। गेहूँ से आटा बनता है, आटे से गेहूँ नहीं। 'बुहारना' एक क्रिया है और 'बुहारी' उस से बनी संज्ञा। जिस से बुहारते हैं, वह—'बुहारी'। कोई नासमझी से उलटा कहे कि 'बुहारी' संज्ञा से 'बुहारना' नामधातु है—'बुहारी से साफ करना'—'बुहारना', तो उसे समझा देना चाहिए कि 'बुहारना' तो स्वयं क्रिया है। क्रिया को क्रिया क्या बनाओ गे ? इसी तरह 'फटकना' मूल क्रिया है। सूप से अन्न साफ करते हैं, तो 'फट फट' आवाज होती है। इस 'फट' से 'फटक' **मूलधातु** हिन्दी की बनी–'फटकना'। 'सुशीला गेहूँ फटकती है'। गेहूँ सूप से साफ करती है। नामधातु मे 'आ' प्रत्यय लगता है—किसी नाम के आगे। 'फटकवाना' प्रेरणा है, फटकने की। यह 'फटक' सकर्मक धातु है, सूप से नाज आदि साफ करने के अर्थ मे। एक दूसरी 'फटक' धातु गत्यर्थक भी हिन्दी मे—है 'वह अब इधर फटकता भी नहीं'। 'फटकना' आना-जाना। ये नामधातु नहीं हैं।

अव्यक्त ध्वनि से मूल धातु भी बनती है; जैसे 'थापना'। 'शीला कंडे थापती है'। गोबर के कंडे बनाने में 'थपथप' की आवाज होती है। उसी से 'थापना' क्रिया—'थाप' मूल धातु। 'थाप' का ही व्यत्यय-रूप है—'पाथ'—'सुशीला कंडे पाथती है'। परन्तु 'थपथपाना' नामधातु है—'थप थप करना'। 'आ' धातुक प्रत्यय है—'थपथपा' नामधातु।

'सुखाना' प्रेरणा-रूप है—'सूखना' का। 'धोती सूखती है' और 'राम धोती **सुखाता** है'।

परन्तु पूरब की बोलियो मे :—

१—'धोती **सूखति** है'
२—'धोती **सुखाति** है'

ये दो रूप चलते हैं। 'सूखना' मूल क्रिया है—'सूखती है'—'सूखति है'। परन्तु 'सुखाति है' नामधातु है। 'सूखी हो रही है'–'सुखाति है'। 'सूखा' विशेषण है। सूखा पेड़, सूखी पत्ती। पूरब में 'आ' पुंप्रत्यय के बिना विशेषण :—'सूख बिरवा' 'सूख नाजु'। इस 'सूख' से धातुक 'आ' प्रत्यय हो कर 'सुखा' नामधातु, पूरब में चलती है—'बिरवा सुखान लाग'–वृक्ष सूखने लगे। साथ ही **मूलधातु** के रूप भी चलते हैं :—'बिरवा सूखन लाग'।

'आ' धातुक प्रत्यय होने पर संज्ञा का प्रथम दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है—

माटी—मटियाना
लाठी—लठियाना
सूखा—सुखाना

धातुओं से संज्ञाएँ बनती हैं—बुहारी, चालनी, बैठक आदि। और, संज्ञाओं से धातुएँ बनती हैं—'मटियाना' 'हथियाना' आदि। 'हाथ' संज्ञा है। कोई चीज अपने हाथ कर लेना–'हथियाना'। प्रथम स्वर ह्रस्व हो गया है।

कभी-कभी शब्द-कल्पना बडी विचित्र होती है। 'दिया टिमटिमा रहा था।' धीमी लौ से जलना–'टिमटिमाना'। यहाँ 'टिम टिम' कोई अव्यक्त ध्वनि नहीं है कि उस से 'आ' धातुक प्रत्यय समझा जाए। 'टिमटिमाना' मूल क्रिया है—'टिमटिमा' मूल धातु है। परन्तु **'भड़भड़ाना'** नामधातु है।

———

सातवाँ अध्याय

संयुक्त क्रियाएँ

दूसरे खण्ड का यह अन्तिम अध्याय है। क्रिया के संबन्ध मे आवश्यक सब जानकारी संक्षेप मे दी गई। यहाँ संयुक्त क्रिया के बारे मे कुछ कहना शेष है।

जैसा कि पीछे स्पष्ट हो चुका है—'आता है' आदि हिन्दी की साधारण क्रियाएँ भी सयुक्त-रूप से हैं। 'आता' एक क्रिया-रूप और 'है' दूसरा। एक कृदन्त, दूसरा तिङन्त। दोनो मिल कर 'एक क्रिया':—'राम आता है'। 'आता है' की ही तरह 'गया है' 'सोया है' आदि भी संयुक्त हैं। परन्तु यहाँ हम 'संयुक्त क्रिया' के उस विशेष रूप की चर्चा करे गे, जो हिन्दी की अपनी सब से बडी विशेषता है और जिस से ऐसे अर्थ-विशेष ध्वनित होते हैं कि किसी एक ही पद का अनुवाद किसी दूसरी भाषा मे वाक्यो के द्वारा ही हो सकता है, पद का पद मे ही संभव नहीं।

मुख्य और सहायक क्रिया

इन संयुक्त क्रियाओं में सहायक क्रिया कभी अपना 'अर्थ' एकदम छोड़ देती है, जब अर्थान्तर ध्वनित करती है। कभी अपना 'अर्थ' रख कर भी कुछ विशेषता पैदा करती है। कभी धातुओ का समास होता है, कभी क्रियाओ का और कभी धातुज संज्ञा का और धातु का।

'खा-पी ले गा, क्या बात है!'

यहाँ 'खा' और 'पी' धातुओ का समास हो कर संयुक्त रूप है—

'खा–पी'। इस 'खा-पी' की सहायक क्रिया है—'ले'। इस 'ले' धातु ने अपना अर्थ यहाँ बिलकुल छोड दिया है। कोई किसी से कुछ ले नहीं रहा है—ले गा नही! 'ले' धातु सहायक रूप से आ कर यहाँ यह ध्वनित करती है कि 'जल्दी क्यो कर रहे हो, खाए गा, शान्ति रखो।'

'रोटी **बना दी**! और काम ही क्या था!'

'बनाना' और 'देना' का संयुक्त रूप है—'बना दी'। 'देना' का मूल अर्थ यहाँ अभिप्रेत नही है, पर उस की झनक है। मतलब यह है कि रोटी जो बनाई है, उस का उपयोग बनाने वाला न करे गा। परन्तु :—

'रोटी **बना ली** और बस!'

यहाँ 'बनाना' और 'लेना' का सयुक्त रूप है—'बना ली'। स्पष्ट है कि बनाने वाला भी रोटी का उपयोग करे गा। इसी तरह:—

'चिट्ठी लिख दी'—'चिट्ठी लिख ली'
'काम कर दिया'—'काम कर लिया'

इत्यादि मे अन्तर है। 'गिरना' और 'पड़ना' 'मिलती-जुलती क्रियाएँ हैं। पत > पत > 'पड़'। 'गिरता-पड़ता चला आ रहा है' मे, 'गिर' और 'पड़' दोनो संयुक्त हैं। अपना 'अर्थ' किसी ने छोड़ा नही है, परन्तु दो मिल कर 'बहुत अधिक गिरना' या 'बार बार गिरना' सूचित करती हैं।

'बच्चा **गिर पड़ा**!'

यहाँ आकस्मिकता ध्वनित है, उद्वेग भी।

'**वह चल पड़ा**!'

यहाँ क्रिया की निष्पत्ति प्रकट है।

'वह ऐसा काम **कर बैठा** कि क्या कहा जाए !'

यहाँ 'बैठना' सहायक क्रिया से अकरणीयता काम की ध्वनित है और कर्ता का अधिक्षेप भी !

'**मर-मिटा** वह तो !'

'मरना' और 'मिटना' प्रायः समानार्थक है और इकट्ठे आकर 'एकदम मिट जाना' ध्वनित कर रही है ।

कभी-कभी एक ही क्रिया की द्विरुक्ति होती है और उस से भी क्रिया का अधिक या बार-बार होना ध्वनित होता है, पर उसे 'संयुक्त क्रिया' नही, 'द्विरुक्त क्रिया' कहते हैं:—

'**मर-मर** कर किसी तरह किया है !'

'मरना' यहाँ अपने मुख्य अर्थ मे नही, लक्षणा से कष्टातिशय सहन करने में है । 'मर-मर कर' अत्यधिक कष्ट सह कर ।

'पढ - पढ कर क्या करोगे,
यदि स्वास्थ्य चौपट हो गया !'

'पढ-पढ कर'—अत्यधिक पढ़ कर ।

'दूसरो का माल **चुरा-चुरा** कर'

'बार-बार' या 'अत्यधिक' चुरा कर । यो द्विरुक्त क्रियाएँ तो अपने ही 'अर्थ' का (और कही लक्ष्यार्थ का) अतिशय या 'पौनःपुन्य' (बार-बार होना) प्रकट करती हे, परन्तु 'संयुक्त क्रियाएँ' प्रायः अर्थ-विशेष ध्वनित करती है ।

सभी संयुक्त क्रियाएँ तथा द्विरुक्त क्रियाएँ सब तरह से प्रयुक्त होती हैं । सभी कालो मे इन के बराबर प्रयोग होते हैं ।

———

तीसरा खण्ड

पहला अध्याय

विशेषण और अव्यय

वाक्य के दोनो ('उद्देश्य' और 'विधेय' नाम के) मुख्य तत्त्वो का परिचय पहले तथा दूसरे खण्ड में दिया गया। इस खण्ड मे उन के विशिष्ट पोषक तत्त्व और परिकर—विशेषण और अव्यय—देखे जाएँगे। इस अध्याय मे विशेषण और अगले अध्याय में 'अव्यय'।

विशेषण के दो भेद

विशेष्य मुख्यतः द्विधा विभक्त है उद्देश्य और विधेय, या सज्ञा और क्रिया, इस लिए उस के विशेषण भी द्विधा विभक्त हैं—संज्ञा-विशेषण और क्रिया-विशेषण। क्रम से इन का परिचय दिया जाएगा।

संज्ञा विशेषण

संज्ञा की विशेषता जिस शब्द से मालूम पडे, वह 'संज्ञाविशेषण'। जो विशेषता बतलाए, वह **विशेषण** और जिस की विशेषता बतलाई जाए, वह **विशेष्य**। संज्ञा का विशेषण:—

'**अच्छा** लड़का **अच्छी** पुस्तके पढता है'

यहाँ 'अच्छा' और 'अच्छी' विशेषण हैं। 'लड़का' और 'पुस्तके' विशेष्य हैं।

'लड़का पुस्तक पढता है'

साधारण प्रयोग है। 'लडका' तथा 'पुस्तक' निर्विशेष पद हैं। 'अच्छा लड़का अच्छी पुस्तक पढता है' यहाँ ये दोनो संज्ञाएँ विशिष्ट हैं, अच्छेपन से। दोनो में अच्छापन बतलाया गया है। 'पढना' विधेय है। उस की कोई विशेषता नही बतलाई गई है।

क्रिया-विशेषण

यदि क्रिया की विशेषता कोई शब्द बतलाए, तो वह 'क्रिया-विशेषण'। **विशेष्य** क्रिया हो गी:—

लड़का **अच्छा** पढता है
लडकी **अच्छा** पढती है
लड़के **अच्छा**-पढ़ते हैं

यहाँ पढने की विशेषता 'अच्छा' शब्द बतला रहा है। यह **क्रिया-विशेषण** है। क्रिया में 'अपना' कोई वर्ग-वचन होता नहीं है; कर्ता या कर्म के ही वर्ग-वचन वह आरोपित कर लेती है। सो, जब उस के 'अपने' कोई वर्ग-वचन हैं नही, तो ऐसी जगह क्रिया-विशेषण सदा पुंवर्ग-एकवचन रहता है, जैसे 'भाववाच्य' क्रिया रहती है। इसी लिए ऊपर सर्वत्र 'अच्छा' विशेषण है।

'अच्छा लड़का अच्छा पढता है'

यहाँ लडका भी अच्छा और उस का पढना भी अच्छा। एक संज्ञा-विशेषण, दूसरा क्रिया-विशेषण।

संज्ञा-विशेषण के दो भेद

संज्ञा-विशेषण का प्रयोग दो तरह से होता है—उद्देश्यात्मक और विधेयात्मक। सो, इस प्रयोगभेद से उस के दो भेद हैं—**उद्देश्यात्मक विशेषण और विधेयात्मक विशेषण**। संक्षेप कर के इन्हे 'उद्देश्य-विशेषण' और 'विधेय-विशेषण' भी कह सकते हैं। विधेयात्मक विशेषण

'विधेय-विशेषण'। वैसे वाक्य में 'विधेय' क्रिया होती है, इस लिए विधेय का विशेषण 'क्रियाविशेषण'। परन्तु संज्ञा का विधेयात्मक विशेषण ही 'विधेय-विशेषण' कहलाता है। 'क्रिया-विशेषण' पृथक् चीज है।

संज्ञा का उद्देश्य-विशेषण देख ही चुके हैं:—

अच्छा लड़का पढता हैं
अच्छी लड़की पढती है

ये उद्देश्य-विशेषण हैं। विशेषता ('अच्छापन') 'उद्देश्य' रूप से है। यदि विशेषता विधेय रूप से हो, तो 'विधेय-विशेषण':—

यह **लड़का** अच्छा है
ये लड़के **शोहदे** नही है
यह लड़की **बेपढ़ी** है

यहाँ तीनो विशेषण विधेयात्मक हैं। ऊपर लडके के अच्छेपन का प्रतिपादन है। दूसरे वाक्य मे लड़को के शोहदेपन का निषेध विधेय है। यह भी 'विधेय विशेपण' है। तीसरे वाक्य में लडकी का बेपढापन बतलाया गया है, इस लिए 'बेपढी' विधेय विशेषण है।

यह भी स्पष्ट हुआ कि विशेषता 'गुण' की होती है, या क्रिया की। 'अच्छापन' या 'शोहदापन' गुणवाचक विशेषण है और 'बेपढी' क्रियावाचक विशेषण है। 'राम चतुर है' मे 'चतुर' गुणवाचक विधेय-विशेषण है और 'राम अच्छा गवैया है' में 'गवैया' शब्द 'राम' का क्रियावाचक विधेय-विशेषण है। 'गाना' एक क्रिया है। यहाँ 'अच्छा' शब्द 'गवैया' का विशेषण है। विशेषण का भी विशेषण होता है। 'गवैया' विशेषण और उस का विशेषण 'अच्छा'। विशेषण का विशेषण भी उद्देश्यात्मक और विधेयात्मक होता है। उद्देश्यात्मक ऊपर 'अच्छा' विशेषण है, 'गवैया' का और:—

'राम गवैया अच्छा है'

यहाँ 'अच्छा' विधेयात्मक विशेषण है—'गवैया' का। 'गवैया' स्वतः भी 'राम' का विधेयात्मक विशेषण है। राम **गवैया** है और गवैया **अच्छा** है। यों विशेषण का विशेषण भी दो प्रकार का हो गया।

क्रिया-विशेषण में ये दो भेद नहीं होते, क्यों कि वह तो 'विधेय' ही रहती है! परन्तु विधेयता उसी क्रिया पर रहती है, जिसे लोग 'पूर्ण क्रिया' और 'समापिका क्रिया' कहते हैं। 'लड़का पढ़ता है' में 'पढता है' क्रिया ही विधेय है। पढ़ने का ही विधान या प्रतिपादन मुख्य है। सो, क्रिया-विशेषण कभी उद्देश्यात्मक हो गा ही नहीं। परन्तु जब क्रिया का रूप विधेयात्मक न हो, तो उस का विशेषण उद्देश्यात्मक भी हो गा:—

'अच्छा गवैया सम्मान पाता है'

'**जोर जोर** से रोनेवाला सब को बुरा लगता है'

'गवैया' और 'रोनेवाला' शब्दो मे क्रियाश है—'गाना' और 'रोना' क्रियाएँ इन मे हैं, परन्तु उन मे विधेयता नहीं है। क्रिया का रूप विशेषण या संज्ञा मे जब बदल जाता है, तो उस मे विधेयता नहीं रह जाती। तब उद्देश्य (संज्ञा) की तरह उन का व्यवहार होता है। इसी लिए ऐसे शब्दो के 'उद्देश्यात्मक विशेषण' भी होते हैं।

यो प्रयोग–भेद से विशेषण के दो भेद हुए **उद्देश्य–विशेषण** और **विधेय-विशेषण**। विशेष्य-भेद से दो (या तीन) भेद–संज्ञाविशेषण, क्रिया-विशेषण (और विशेषण का विशेषण–'**प्रविशेषण**')।

विशेषता-भेद से भी गुण की विशेषता, या क्रिया की विशेषता। यानी **गुणरूप** विशेषण और क्रिया-रूप विशेषणः—

सुशील लड़का सम्मान पाता है
नाचने वाले लडके पढ़ते नही हैं

'सुशील' गुणवाचक विशेषण और 'नाचनेवाले' क्रियावाचक विशेषण हैं। 'सुशीलता' 'गुण' है और 'नाचना' क्रिया है।

संख्या और परिमाण

'संख्या' और 'परिमाण' भी विशेषण-रूप से आते हैं। संख्या क्रिया मे होती नही है, इस लिए क्रिया के संख्यावाचक विशेषण संभावित नही। 'चार खाता है' 'चार पढता है' नहीं हो सकता। हाँ—'बार' आदि के विशेषण—'चार बार खाता है' जैसे हो सकते हैं। अब यह 'चार बार' एक तरह से 'क्रिया-विशेषण' हो गया।

संज्ञा के संख्यावाचक विशेषण होते ही हैं:—

एक लडका-**एक** लड़की
दो लड़के-**दो** लड़कियाँ
तीन वृक्ष—**तीन** लताएँ

इसी तरह दस, पचास, सौ, हजार, लाख, करोड़ आदि विशेषण दोनो वर्गों मे समान रूप रहेगे। परन्तु 'पूरणार्थक' या निर्देशात्मक संख्यावाचक विशेषण मे (वर्ग-भेद तथा वचन-भेद से) रूप-भेद हो गा:—

पहला लड़का, पहली लड़की, पहले लड़के
दूसरा लड़का, दूसरी लड़की, दूसरे लड़के

इसी तरह तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, और सातवाँ आदि चलेगे! बीच में 'छठा' ('छठवाँ' नहीं) और 'साँतवे से फिर 'वाँ' शुरू हो जाता है—आठवाँ, अठवीं, आठवे आदि। नौवाँ, दसवाँ, सौवाँ। आगे फिर अङ्को के आगे 'वाँ' जोड़ देते हैं—१०१ वाँ १०२ वाँ,

१०३ वाँ, १०४ वाँ, १०५ वाँ आदि। ('१०१ ला' '१०२ रा' '१०४ था' नही लिखा जाता।) समझने की चीज है। वस्तुतः प्रयोग 'तीसरा' 'चौथा' 'बीसवाँ' 'पचासवाँ' 'सौवाँ' तक ही होते हैं। आगे '१०१ मे से अन्तिम' बहुत कम बोलने मे आता है।

परन्तु 'पहला' की जगह—'१ ला' लिखना या 'दूसरा' की जगह '२ रा' लिखना ठीक नही। सीधे 'पहला' 'दूसरा' लिखना चाहिए।

'१ ला' भद्दा! संक्षेप भी क्या हुआ? '२ रा' लिखने से 'दो रा' लोग पढ़ेंगे! '१ ल.' को 'एकला' पढेंगे।

परिमाण-वाचक विशेषण

तोल या नाप को परिमाण कहते हैं।

'सेर भर दूध'—'गज भर कपडा'

'सेर भर' परिमाणवाचक विशेषण है—'दूध' का और 'गज भर' परिमाणवाचक विशेषण है कपडे का।

थोड़ा-सा दूध—**ज़रा-सा** कपडा

यहाँ 'थोडा-सा' तथा 'जरा-सा' विशेषण कोई निश्चित परिमाण नही बतलाते, स्वल्पता मात्र बतलाते हैं। ये अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण या तो स्वल्पता बतलाते हैं, या विपुलताः—

'कुछ दूध'—'कुछ कपड़ा'—स्वल्पता
'बहुत-सा दूध'—'बहुत-सा कपडा'—विपुलता

इसी तरह अनिश्चित संख्यावाचक विशेषणः—

'**कुछ** आदमी जमा है'—न्यूनता
'**बहुत-से** आदमी जमा हैं'—अधिकता

यों अनिश्चित संख्यावाचक और अनिश्चित परिमाण-वाचक विशेषण न्यूनता-अधिकता और स्वल्पता-विपुलता प्रकट करते हैं।

क्रिया की न नाप-तोल, न संख्या ही ! फलतः उसका 'बहुत' होना या 'बार-बार' होना ही ऐसे शब्दों से बतलाया जाता है:—

लड़का **बहुत** पढता है
लड़की **बहुत** पढ़ती है

और—

लड़का काशी **बहुत** जाता है
बहू मायके **बहुत** जाती है

न्यूनता और स्वल्पता भी:—

'लड़का पढता **कम** है'
'लड़की खेलती **थोड़ा** ही है'

और—

'लड़का ननसाल **कम** जाता है'
'बहू पीहर **कम** जाती है'

किसी सकर्मक क्रिया के विशेषण दूसरी तरह से आते हैं; किसी अव्यय आदि को साथ ले कर, उसके विशेषण बन कर :—

लडका पुस्तक **अच्छी तरह** पढता है
लडकी पुस्तक **अच्छी तरह** पढ़ती है

'अच्छी तरह' क्रिया-विशेषण है। यदि क्रिया का फल कर्म पर दिखाई दे, तो कर्म के द्वारा क्रिया की विशेषता प्रकट हो गी :—

राम ने खंभे **टेढ़े** गाडे हैं
यह दर्जी कपडे **अच्छे** सीता है

'यहाँ 'टेढापन' और 'अच्छापन' क्रिया में है, कर्म में नहीं। कर्म के द्वारा क्रिया की ही विशेषता प्रकट है। खंभे टेढ़े नहीं हैं; गडे हैं टेढे। गड़ने में टेढ़ापन है। इसी तरह अच्छापन 'सीने' (क्रिया) का कहा जा रहा है। यो, ये क्रिया-विशेषरण कर्म के द्वारा स्पष्ट हैं।

टेढ़े खंभे राम गाडे गा

अच्छे कपडे दर्जी से सिलवाओ

यहाॅ 'टेढ़े' और 'अच्छे' है—'खंभे' और 'कपडे'। ये संज्ञा-विशेषरण हैं। इन से क्रिया मे विशेषता नही प्रकट होती।

बस, विशेषरण का परिचय हो गया।

———

दूसरा अध्याय

अव्यय प्रकरण

भाषा में प्रयुक्त होनेवाले शब्द पीछे कई भागो मे विभक्त किए गए—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया। परन्तु कुछ शब्द ऐसे भी (भाषा मे) चलते हैं, जो न किसी के नाम हैं, न सर्वनाम हैं, न विशेषण हैं और न क्रिया ही हैं। परन्तु भाषा में ये चलते हैं और महत्त्वपूर्ण अपना स्थान रखते हैं। इन का नाम क्या रखा जाए? सोच-समझ कर देखा गया कि ये शब्द पूर्वोक्त शब्द-श्रेणियो मे आते नही हैं और सदा एकरस रहते हैं—वर्ग-भेद या वचन-भेद से इन में कोई किसी तरह का व्यय-विकार नही होता। तो, अविकृत-अव्यय रहने के कारण इन का नाम 'अव्यय' रख दिया गया। जो शब्द संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया से भिन्न हैं और सदा अपरिवर्तित-एकरस रहते हैं, वे 'अव्यय'।

प्राणियो के मुहॅ से दुख-उद्वेग आदि के अतिरेक मे शब्द-विशेष निकलते हैं। चिड़ियॉ खुशी में चहकती हैं और दुख में 'ची' कर देती हैं। इसी तरह गौ आदि के शब्द सुनने मे आते हैं। इन अव्यक्त ध्वनियो को भाषा मे अनुकरणात्मक रूप मे 'चिड़ियाँ **चीं चीं** करने लगीं' यो प्रयुक्त करते हैं। या फिर 'नामधातु' बना कर 'बकरी में मे' करती हैं—'बकरी **मिमियाती है**' यो क्रिया रूप से प्रयोग करते हैं।

परन्तु मानव प्राणी के मुहॅ से जो वैसे शब्द विशेष स्थिति मे निकलते हैं, वे लिपि में बॅध गए हैं—अहा, आह, ओह, ऐ,

आदि। ये शब्द भाषा में भावव्यंजनार्थ प्रयुक्त होते हैं:—

'अहा ! कैसी चाँदनी छिटक रही है !'

यहाँ 'अहा' से हर्षातिरेक प्रकट है। और:—

'ओ हो ! तुम ऐसे हो गए !'

यहाँ 'ओहो' से आश्चर्य ध्वनित होता है। इसी तरह:—

"आह ! कैसी स्थिति है !"

यहाँ 'आह' से दुःखातिशय ध्वनित है। 'ऊँ' से प्रश्न या जिज्ञासा, "ए' 'ओ' से अभिमुख करने की इच्छा आदि की व्यंजना होती है।

ये 'अहा' 'ओहो' 'आह' आदि सदा इसी रूप मे रहते हैं। नैसर्गिक हैं।

कुछ अव्यय-संस्कृत-अव्ययो के रूपान्तर हैं, जो हिन्दी मे चलते हैं—

'तो' 'ही' 'भी' 'और' आदि

संस्कृत 'तु' 'हि' 'अपि' 'अवर' के ये तद्भव रूप हैं। 'अवर' संस्कृत मे अव्यय नही है, पर उस का रूपान्तर 'और' हिन्दी में द्विधा विकसित है। 'वे और व्यापारी होते हैं, जो ग्राहक को धोखा देते हैं' यहाँ 'और' शब्द 'अन्य' अर्थ में है। 'राम और गोविन्द दोनो जाएँ गे' यहाँ 'और' अव्यय है, संस्कृत 'च' के अर्थ में। 'योजक' अव्यय है, दो को जोड़ता है।

'तो' अन्य-व्यवच्छेद में आता है:—

'राम **तो** जाए गा नहीं, औरो की हम जानते नही !'

'ही' से अवधारण होता है:—

'राम **ही** यह काम करे गा'

'भी' समुच्चय में आता है:—

'राम **भी** काशी जाए गा'

'भी' से अन्य लोगो का समुचय है। वे सब तो जाएँगे ही, राम **भी** जाएगा। इसी तरह विविध अव्यय चलते हैं।

कुछ संस्कृत के अव्यय तद्रूप भी हिन्दी मे चलते हैं—संयुक्त रूप मे:—

किन्तु, परन्तु, तथापि

'किम्' एक अव्यय भी है संस्कृत मे, 'किम्' सर्वनाम भी है। अव्यय 'किम्' के साथ 'तु' अव्यय लग कर 'किन्तु' रूप हिन्दी मे चलता है।

संस्कृत में एक अव्यय है—'परम्' और एक अव्यय 'तु' है ही। दोनो का संयुक्त रूप 'परन्तु' हिन्दी मे चलता है। 'किम्' केवल नही चलता, क्योकि हिन्दी को व्यजनान्त शब्द पसन्द नही। 'तु' भी नही चलता, 'तो' तद्भव रूप चलता है। परन्तु 'किन्तु' संयुक्त रूप चलता है। 'परम्' का 'म्' हटा कर 'पर' तद्भव भी चलता है।

'यदि' तद्रुप चलता है और 'यदि+अपि='यद्यपि' भी। 'तदपि' नही चलता, 'तो भी' चलता है, परन्तु कविता मे कही:—

'तदपि कहेउ मुनि बारहि बारा'

यो हिन्दी की 'अवधी' बोली मे तथा ब्रजभाषा काव्य में कही दिखाई दे जाता है। 'तो भी' की जगह 'तथापि' भी चलता है। तथा+अपि='तथापि'।

हिन्दी के अपने यौगिक अव्यय

भाषा मे जब 'अव्यय' नाम की एक श्रेणी निर्धारित हो गई, तो

अन्य यौगिक शब्द भी इसी श्रेणी मे रखे गए, जिनके रूप बदलते नही हैं। संस्कृत मे 'यदा' 'कदा' 'यत्र'—'तत्र' आदि ऐसे ही अव्यय हैं, जो सर्वनामो से बने हैं। हिन्दी ने भी अपने यौगिक 'अव्यय' बनाए हैं और जिस अर्थ के लिए यहॉ 'अपना' अव्यय बन गया, उस के लिए अन्यत्र से कोई अव्यय ला कर नहीं रखा जाता। 'यहॉ' हिन्दी का अपना अव्यय है। इस की जगह संस्कृत का 'अत्र' यहॉ न चले गा। 'यहॉ बैठो' की जगह 'अत्र बैठो' न चले गा। हॉ, संयुक्त रूप से 'यत्र-तत्र कुश बिखरे पडे थे' चलता है; 'जहॉ-तहॉ' की जगह।

हिन्दी ने भी अपने सर्वनामो से तद्धित अव्यय बनाए हैं :—

यह से—**यहाँ** (इस जगह)
वह से—**वहॉ** (उस जगह)
जो से—**जहॉ** (जिस जगह)
कौन—**कहाँ** (किस जगह)
कोई—**कहीं** (किसी जगह)

ये 'यहॉ' आदि स्थानवाचनक अधिकरण-प्रधान अव्यय है। **कालवाचक** हैं —

अब, तब, जब, कब, और कभी

इसी तरह प्रकारवाचक :—

यो, त्यो, ज्यो, क्यो

ये तद्धित अव्यय हैं। इस तरह—'यो'। किस तरह—'क्यो'।

समास-सन्धि में अव्यय

अनेक अव्ययो का आपस में 'समास' होकर 'सन्धि' हो जाती है। प्रायः यौगिक अव्ययो का 'ही' अव्यय के साथ समास देखा जाता है, और सन्धि भी :—

अब+ही='अभी'। तब+ही='तभी'

यौगिक अव्यय के अन्त्य 'अ' का लोप और ब्+ही='भी'। अब ही – 'अभी'। इसी तरह 'तभी' भी है। 'ही' से निर्धारण है—'अब जाओ' और 'अभी जाओ' मे बडा भारी अन्तर है। यह अन्तर 'ही' के कारण है। इसी तरह 'तब' और 'तभी'।

'कभी' में निर्धारण नही; उलटे अनिश्चय है—'कभी चले जाना'। यह क्यो ? 'ही' का अर्थ (अवधारण) कहॉ गया ? उलटा अर्थ कैसे ? सुनिए।

'कभी' में 'ही' नही है। 'कौन' से 'कब' है। किस समय—'कब'। 'कोई' से 'कभी' है। किसी समय—'कभी'।

'कोई' सस्कृत 'कोऽपि' से बना है—कोऽपि>कोवि>कोइ> 'कोई'। 'को' अंश 'कब' बन गया और आगे 'ई' ज्यों की त्यो है। 'कब' के अन्त्य 'अ' का लोप—'कब्ी'। यही 'कबी' आगे चल कर 'कभी' बन गया। मेरठ-कुरुक्षेत्र आदि मे अब भी 'अबी' 'जबी' बोलते हैं। यानी 'ब' और 'भ' स्वरूप-परिवर्तन करते हैं।

इसी तरह:—

'यही' और 'वही'

संयुक्त अव्यय निर्धारण प्रकट करते हें—

यहाँ+ही='यही'
वहॉ+ही='वही'

यौगिक अव्यय के 'हा' का लोप और अनुनासिकत्व 'ही' की 'ई' पर—'यही' 'वही'। 'यहॉ बैठो' साधारण और 'यहीं बैठे रहो' सावधारण।

'यही'—'वही' अलग हैं। 'यह' 'वह' सर्वनामो से 'ही' अव्यय का समास है और 'ह' का लोप।

परन्तु 'कही बैठो' में अवधारण नही, वरन् स्वेच्छा है—चाहे जहॉ बैठो ! यहॉ भी वही बात है, जो 'कभी' मे कही गई है। 'यही' 'वही' मे 'ही' विद्यमान है, पर 'कहीं' मे वह नही है।

'कोई' से 'कही' अव्यय बना है और 'कौन' से 'कहॉ'। 'कोई' के 'को' मात्र को 'कहॉ' हुआ और अवशिष्ट 'ई' आगे विद्यमान है। 'कहॉ' के अन्त्य 'आ' का लोप और 'कही' पूरा अव्यय। सो, 'कभी' तथा 'कही' **सयुक्त अव्यय** नही है। इनमे 'ही' अव्यय का योग नही है। इसो लिए अवधारण नही।

'ही' अव्यय 'सब' शब्द से भी समास-सन्धि करके—'सभी छात्र आ जाएँ' यो 'सभी' रूप मे चलता है। 'सब' सख्यावाचक विशेषण है और 'सभी' सावधारण संख्यावाचक। यह प्रासंगिक बात; 'ही' अव्यय की गति-विधि के बारे मे।

यौगिक संस्कृत अव्यय

संस्कृत के यौगिक अव्यय 'अन्यत्र' 'सर्वत्र' हिन्दी मे चलते हैं, क्योकि हिन्दी ने ऐसी जगह अपने अव्यय बनाए नही। संस्कृत मे 'सर्व' तथा 'अन्य' शब्द भी 'सर्वनाम' हैं, किसी व्यवस्था के लिए। इसी लिए वहॉ इन शब्दो से भी 'यत्र' 'तत्र' की तरह 'सर्वत्र' 'अन्यत्र' तद्धित अव्यय बन जाते हैं। हिन्दी मे ये शब्द 'सर्वनाम' नही। इस लिए यहॉ इन से तद्धित अव्यय नही बने।

'क्या' स्वयं अव्यय है। अव्यय से अव्यय क्या बने ! 'कुछ' सर्वनाम नही है, विशेषण है—अनिश्चितसंख्या वाचक और अनिश्चित परिमाण-वाचक। इसी लिए इस से भी तद्धित अव्यय नहीं बने।

'उत्तमपुरुष' और 'मध्यमपुरुष' सर्वनामो से अव्यय बनते ही नहीं,—न संस्कृत मे न हिन्दी मे। हिन्दी मे कुल नौ या दस सर्वनाम हैं। 'मै'—'हम' और 'तू-तुम' चार अलग करके शेषः—

१—**यह**—यहाँ, यो, अब
२—**वह**—वहाँ + +
३—**कौन**—कहाँ, क्यो, कब
४—**कोई**—कही + कभी
५—**जो**—जहाँ, ज्यो, जब

यो तद्धित अव्यय बनाते हैं। 'वह' से प्रकार वाचक और काल-वाचक अव्यय हिन्दी ने न बना कर अवधी-ब्रजभाषा के 'त्यो' 'तब' ले लिए हैं। वहाँ **'तिस विधि' 'त्यो'** और **'तेहि अवसर'**—से 'तब' का स्वारस्य है। यहाँ 'उस तरह' चलता है, 'उस समय' चलता है; अव्यय—'त्यो' 'तब' चलते हैं। 'ज्यो-त्यो कर के **तब** काम चलाया।'

'कौन'—किस तरह ऐसा हुआ—'क्यो हुआ'। परन्तु 'कोई' से प्रकारवाचक अव्यय नही बनता—'किसी तरह' चलता है। बनता, तो 'क्यो ई' रूप होता। 'को' बना 'क्यो' और 'ई' ज्यो की त्यो। तब 'क्योई' भला न लगता, इस लिए छोड़ दिया।

कृदन्त 'पढ कर' 'लिख कर' तथा 'पढने' 'लिखने' (क्रियार्थक) प्रयोग भी अव्ययी-भाव से रहते हैं—सदा अपरिवर्तित।

सामासिक शब्द—प्रतिदिन, प्रतिव्यक्ति, ध्यानपूर्वक, आज्ञानुसार, आदि भी अव्ययीभाव से रहते हैं—सदा अपरिवर्तित।

यो यह 'अव्यय' शब्दो की एक श्रेणी हुई।

हिन्दी में कुछ अव्यय किसी एशियाई भाषा के भी चलते हैं; जैसे 'लेकिन' 'उफ' आदि। हिन्दी की उर्दू-शैली में ऐसे अव्यय

अधिक चलते हैं। हिन्दी में 'परन्तु' की जगह कभी 'लेकिन' भी चलता है; पर उर्दू में 'परन्तु' नही !

अव्ययो के प्रयोग

अव्ययो के प्रयोग सुव्यवस्थित हैं और सरल हैं, इस लिए विशेष कुछ नही कहना है, परन्तु 'न' और 'नही' तथा 'तो' और 'तब' के प्रयोगो में सावधानी नही रखी जाती; इस लिए यहाँ कुछ कहना आवश्यक है।

'न' और 'नही'

संस्कृत में 'न' तथा 'नो' ये दो अव्यय निषेधार्थक हैं। हिन्दी ने 'नो' नहीं लिया। 'न' तद्रूप यहाँ चलता है और कहीं- कहीं (ब्रजभाषा आदि की कविता में) 'ना' भी हो जाता है।—'ना ना' करत गए हरि दूरि'।

'ना मोरे पूत, ना मोरे नाती,
चरखा के बल मोरे द्वारे झूमे हाथी'

यह अवधी-झलक है—'मोरे'। उर्दू में सामासिक शब्द 'नाला-यक' जैसे चलते हैं। 'ना काटा, ना खून किया' खुसरो की पुरानी हिन्दी मे भी 'ना' है।

परन्तु साधारण प्रयोग हिन्दी के 'न' से चलते हैं। विशेष जोर देने के लिए 'नही' संयुक्त अव्यय आता है। यह 'न' और 'ही' के योग से बना ह। हिन्दी क 'साध्य' क्रियापदो के साथ प्रायः 'न' आता है :—

वह **न** **जाए**, तो अच्छा !
राम काशी **न** **जाए** गा
क्या मै **न** **जाऊँ** ?

वाक्य के अन्त में अनुनय-प्रश्नार्थक 'न' आता है, निषेधार्थक नही .—

तुम काशी जाओ गे न !

'सिद्ध' प्रयोगो मे वाक्यान्त 'न' दृढ़ता प्रकट करता है, कुछ अपनी बात पक्की करने मे:—

कहिए, अंग्रेजी राज गया न !

यानी वाक्यान्त का 'न' निषेध में नही आता। यदि निषेधक वाक्य के अन्त मे हो लाना है, तो 'न' नही; 'नही' आए गा:—

तू **जाए गा नहीं** ?

उस ने वह काम **किया ही नहीं** !

यानी 'साध्य' तथा 'सिद्ध' दोनो ही क्रियाओ के साथ वाक्यान्त मे 'नही' आए गा, क्योकि 'न' से निषेध हो गा ही नही ! वैसे 'न' आता है 'साध्य' क्रिया के साथ।

'सिद्ध' क्रिया के साथ 'नही'

'सिद्ध' (वर्तमान या भूतकाल की) क्रिया के साथ जोरदार 'नही' आता है—

राम पढ़ने **नही जाता** है

राम पढ **नही रहा** है

राम पढने **नही गया** था

संयुक्त वाक्य मे यदि दोनो जगह पृथक्-पृथक् निषेध करना है, तो (दोनो जगह) **'न' आता है**, सब तरह की क्रियाओ के साथ:—

न राम पढने जाता है, **न** घर काम करता है

राम ने **न** कुछ पढा, **न** घर ही गया

न यह घर जाए गा, **न** यहाँ कुछ करे गा

एक जगह 'न' प्रत्यक्ष न हो; पर अन्वित हो; तो भी 'न' ही आता है:—

'राम आए गा, **न** गोविन्द'
'राम आया, **न** गोविन्द ही !'

पूर्व वाक्यों में भी 'न' अन्वित है। साधारण वाक्यों में स्थिति वही है—'साध्य' क्रिया का निषेध 'न' से और 'सिद्ध' क्रिया का निषेध 'नही' से।

'तो' और 'तब'

'तो' संस्कृत 'तु' का तद्भव रूप है और 'तब' हिन्दी का 'अपना' अव्यय है। 'साध्य' क्रिया के साथ प्रायः 'तो' और 'सिद्ध' के साथ 'तब' आता है; संयुक्त वाक्य में:—

राम आए गा, **तो** काम बन जाए गा
राम आए, **तो** काम बने

शर्त पर जोर न हो, काल पर जोर देना हो, तो 'तब' भी आ जाता है :—

राम आए, **तब** काम बने

हेतु-हेतुमान्:—

वर्षा होती, तो अन्न होता

'सिद्ध' क्रिया के साथ 'नही' का प्रयोग होता है:—

राम पढ़ता **नहीं** है
लड़की खाली **नहीं** बैठती
हम ने कुछ भी **नहीं** कहा

'वह कुछ भी न बोला, चला गया' ऐसे 'न' से भी कहीं सिद्ध प्रयोग होते हैं। यहाँ किसी योजक अव्यय के बिना ही संयुक्त वाक्य है।

'राम **न आया**, तो मैं ही जाऊँगा'

यहाँ 'न आया' में 'आया' का प्रयोग भविष्यत् काल में है—'न आए गा' मतलब है। इसी लिए 'तो' अगले वाक्य में है। अन्यथा:—

राम जब न आया, **तब** मै ही गया

यो काल वाचक 'तब' रहेगा।

संयुक्त वाक्य में 'नही' की जगह 'न' आ जाता है—'न आया, तब मै गया'। 'आया' सिद्ध क्रिया है।

क्रिया की निष्पत्ति सन्दिग्ध हो, (या न हुई हो और 'हेतुहेतुमद्' प्रयोग हो), तब 'तो' का प्रयोग होता है। क्रिया की निष्पत्ति निश्चित रूप से न हुई हो, तब 'नहीं' रहे गा:—

'राम ने पुस्तक **नहीं** पढी है'

परन्तु 'साध्य' में 'न'—

'राम पुस्तक **न** पढे गा'

हेतु-हेतुमान् भाव हो, तो 'तो' आता है और 'साध्य' प्रयोग मे भी 'तो' आता है। काल-सूचनार्थ 'तब' आता है, यह कई बार कहा जा चुका है। 'न'—'नही' तथा 'तो'–'तब' की यह साधारण व्यवस्था है। अपवाद-रूप तो रहते ही हैं।

———

चौथा खण्ड

(यौगिक शब्द)

पहला अध्याय

तद्धित-प्रकरण

'अव्यय'–प्रकरण में यह देखा कि कितने ही अव्यय तद्धित-प्रक्रिया द्वारा सर्वनामो से बने हैं। इस से यह सूचित हुआ कि एक शब्द से दूसरा शब्द बनता है। ऐसे बने हुए शब्दो को 'यौगिक' कहते हैं। 'योग' से, यानी 'जोड़'—'मेल' से बना हुआ शब्द 'यौगिक'।

यह 'योग' कभी 'प्रकृति' और 'प्रत्यय का होता है; जैसे 'जो' से 'जब' 'यह' से 'अब', 'कौन' से 'कब'। 'पढ़' प्रकृति (धातु) से 'न' प्रत्यय और पुंविभक्ति 'पढ़ना' भाववाचक-संज्ञा। यानी संज्ञा और सर्वनामो से दूसरे शब्द बनते हैं, उसी तरह 'धातु' से भी बनते हैं। एक वर्ग 'तद्धित' कहलाता है, दूसरा 'कृदन्त'। प्रकृति-प्रत्यय के योग से बने शब्दो के ये दो वर्ग हुए 'तद्धित और 'कृदन्त'।

तीसरा वर्ग 'यौगिक' शब्दों का 'समास' कहलाता है। 'समास' में संज्ञा से संज्ञा का योग हो कर कोई पृथक् चीज बन जाती है। कभी संज्ञा और विशेषण का योग हो जाता है और कभी कई विशेषण ही मिलकर एक रूप मे आ जाते हैं। कभी अव्यय और संज्ञा का योग हो जाता है। यौगिक शब्दो का यह वर्ग 'समास' कहलाता है। सामासिक शब्द के अन्त मे कभी कोई (सामासिक) प्रत्यय भी आ

जाता है; यह अलग बात है। 'योग' यहाँ (समास में) मुख्यतः प्रकृति और प्रत्यय का नही होता है।

इस तरह 'यौगिक' शब्दो के ये तीन भेद हुए। तीनो का परिचय इस खण्ड मे पृथक्-पृथक् दिया जाए गा।

तद्धित-प्रत्यय

तद्धित, कृदन्त, समास, ये तीनो संस्कृत के शब्द हैं। 'तद्धित' और 'कृदन्त' यहाँ 'पारिभाषिक' शब्द के रूप मे गृहीत है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण या अव्यय से शब्दान्तर बनाने की प्रक्रिया 'तद्धित' कहलाती है और 'धातु' से संज्ञा-विशेषण आदि बनाने की टकसाल का नाम 'कृदन्त' है। 'समास' का अर्थ है—'संक्षेप'। कई शब्दो को मिला कर विभक्ति आदि की बचत कर लेना 'समास' कहलाता है। यह संस्कृत का 'यौगिक' शब्द है और यहाँ भी इसी रूप मे चलता है। 'समास' का अर्थ 'संक्षेप' समझ मे आ गया, जो 'सम्' और 'आस' से बना (संस्कृत में) 'यौगिक' शब्द है। वहाँ 'तद्धित' और 'कृदन्त' शब्द भी यौगिक हैं, पर इन के योग-अवयव यहाँ बेकार हैं। इस लिए हिन्दी व्याकरण मे ये दो पारिभाषिक शब्द हैं। पारिभाषा दे दी गई है—धातु से संज्ञा आदि बनाने की प्रक्रिया 'कृदन्त' और संज्ञा आदि से संज्ञान्तर आदि बनाना 'तद्धित'। 'समास' भी यहाँ पारिभाषिक है; क्योकि 'सम्' तो ठीक, पर 'आस' हिन्दी में कुछ नहीं है। पहले तद्धित, फिर कृदन्त और तब 'समास' बतलाया जाए गा।

सर्वनामो से अव्यय बनने की बात कही ही जा चुकी है।

संज्ञा से विशेषण

'ज्ञान' एक भाववाचक संज्ञा है। किसी व्यक्ति, जाति या पदार्थ मे रहने वाले गुण या क्रिया को 'भाव' कहते है। 'ज्ञान' एक क्रिया

है—'जानना'। यह किसी के आश्रित ही रहे गा, स्वतंत्र (अलग) नही रह सकता। इसी तरह 'चतुराई' एक गुण है। किसी में रहने की चीज है। 'ज्ञान' संस्कृत भाववाचक संज्ञा है—'कृदन्त'; और 'जानना' हिन्दी भाववाचक संज्ञा (कृदन्त) है। 'चतुराई' हिन्दी भाववाचक संज्ञा है—तद्धित। 'चतुराई' गुण है। 'चतुर' संस्कृत के विशेषण से 'आई' 'अपना' तद्धित भाव-प्रत्यय 'चतुराई'।

हाँ, 'ज्ञान' शब्द संस्कृत भाववाचक संज्ञा है। इस से 'ई' (अपना) प्रत्यय कर के 'ज्ञानी' विशेषण। प्रत्यय आने पर प्रकृति ('ज्ञान') के अन्त्य 'अ' का लोप हो जाता है:—

('ज्ञान' का) ज्ञान्+ई= **ज्ञानी**'

एक विदेशी भाषा का शब्द 'शहर' हिन्दी में चलता है। 'शहर' जातिवाचक संज्ञा है। इस से भी 'ई' प्रत्यय कर के 'शहरी' विशेषण:—

शहरी रहन-सहन
शहरी मीन-मेख
शहरी खिलौने

'देहात' से 'देहाती'—

देहाती रहन-सहन
देहाती लड़का
देहाती खिलौने

'एशिया' व्यक्तिवाचक संज्ञा है—एक भूखण्ड का नाम है। इस से 'ई' प्रत्यय हो कर:—

एशियाई जनता
एशियाई मनुष्य

'महासभा' संस्कृत शब्द है! इस से 'ई' प्रत्यय हिन्दी का लग कर विशेषण:—

महासभाई जलसा
महासभाई जुलूस

'ई' प्रत्ययान्त विशेषण दोनो वर्गों में और दोनो वचनो में एक से रहते हैं। उदाहरणो से स्पष्ट है।

संस्कृत शब्दो से संस्कृत प्रत्यय हो कर बने तद्धित शब्द भी हिन्दी मे चलते हैं। बना-बनाया माल।

'नगर' जातिवाचक संज्ञा से 'नागरिक' विशेषण। 'ग्राम' जातिवाचक संज्ञा से 'ग्रामीण' विशेषण। इतना समझ मे आ जाता है कि 'नगर' से 'नागरिक' और 'ग्राम' से 'ग्रामीण' है। 'नगर' से 'नागरिक' कैसे बना; यह संस्कृत-व्याकरण की बात है।

पीछे जिस 'ई' प्रत्यय का उल्लेख हुआ है, वह 'पारिश्रमिक' आदि के अर्थ में भी आता है। मजदूर का पारिश्रमिक 'मजदूरी'।

विशेषण से संज्ञा

'मीठा' विशेषण है। इससे 'आस' हिन्दी प्रत्यय लग कर 'मिठास' भाववाचक संज्ञा बन गई। 'इस मे खूब मिठास है'। प्रकृति के प्रथम दीर्घ स्वर को ह्रस्व रूप मिल गया है:—

मीठा-मिठास

इसी तरह **'नीचा'** विशेषण है। इस से 'आई' प्रत्यय हो कर **'निचाई'** भाववाचक संज्ञा:—

'इस की **निचाई** सौ फुट हो गी'

'नी' का 'नि' रूप हो गया है—ह्रस्व। 'सवर्ण-दीर्घ' सन्धि—'निचाई'।

इसी तरह 'ऊँचा' विशेषण है। 'आई' प्रत्यय लग कर 'उँचाई'।

"इस चोटी की उँचाई सौ फुट हो गी"

'ऊँ' को 'उँ' हो गया है। यदि मानवता अभिधेय हो, तो हिन्दी के इस 'आई' प्रत्यय से बने शब्द काम में न लाए जाएँ गे। तब संस्कृत के 'ता' अथवा 'त्व' भाववाचक प्रत्ययो से बने —

'नीचता'—'उच्चता'

जैसे शब्द चले गे। परन्तु 'मिठास' के साथ-साथ संस्कृत भाववाचक संज्ञाएँ:—

'मधुरता' 'माधुर्य'

आदि बराबर चलती हैं। 'चतुराई' हिन्दी भाववाचक संज्ञा के साथ 'चतुरता' 'चातुर्य' आदि संस्कृत भाववाचक संज्ञाएँ भी चलती हैं।

हिन्दी का 'आई' प्रत्यय 'कर्म' के अर्थ मे भी होता है:—

वह पुरोहिताई करता है

पुरोहित का काम—'पुरोहिताई'। संस्कृत का 'पौरोहित्य' भी चलता है। पुरोहित का काम—'पौरोहित्य'।

संज्ञा से विशेषण

संज्ञा से विशेषण भी तद्धित प्रक्रिया मे बनते हैं।

'सोना' संज्ञा से 'सुनहला' विशेषण। सोने का-सा रंग जिस में हो, वह:—

सुनहला फ्रेम
सुनहली जंजीर
सुनहले कागज

यहाँ 'हल' प्रत्यय है और आगे 'आ' पुंविभक्ति। प्रकृति का दीर्घ स्वर ('ओ') ह्रस्व ('उ') हो गया है। 'रूपा' से:—

रुपहला, रुपहले, रुपहली

यदि सोने की बनी चीज हो, तब 'हल' प्रत्यय न होगा:—

सोने के गहने
सोने की जंजीर
सोने का कड़ा

यो तद्धित 'संबन्ध'-प्रत्यय ('क') से विशेषण बने गे।

संज्ञा से संज्ञान्तर

पीछे भाववाचक संज्ञा बताई गई। जातिवाचक संज्ञाएँ भी तद्धित से बनती हैं। 'सोना' से 'सुनार'। 'आर' प्रत्यय है और प्रकृति के प्रथम स्वर को ह्रस्वता। सोने का काम करने वाला—'सुनार'। इसी तरह—'लुहार'। लोहे का काम करने वाला—'लुहार'।

चाम का काम करने वाला—'चमार'। परन्तु 'कहार' मे यह 'आर' प्रत्यय नही है। सोना, लोहा, चाम आदि की तरह 'कह' या 'काह' कोई चीज नहीं है कि उस का काम करने वाले 'कहार' कहे जाएँ। 'कहार' तो संस्कृत 'स्कन्धहार से बना तद्भव शब्द है। 'स्कंन्ध' ('कन्धे') पर बहँगी रख कर कोई चीज ये ढोते हैं—'स्कन्धेन (स्कन्धाभ्या वा) हरन्ति भारमिति—'स्कन्धहाराः'। 'कन्धा' तद्भव है 'स्कन्ध' शब्द का, जिस से 'आर' प्रत्यय हो नही सकता। ये लोग कन्धे बनाने का काम थोडे ही करते हैं!

'तेल' एक संज्ञा है। उस से 'ई' प्रत्यय होकर 'तेली' एक दूसरी संज्ञा बन गई। 'ताम्बूल' का तद्भव रूप 'तमोल'—पान। 'तमोल' से

'ई' प्रत्यय हो कर—'तमोली' जातिवाचक संज्ञा। 'पान' से 'ई' प्रत्यय नही किया, क्योकि 'जल' का पर्याय यहाँ 'पानी' चलता है।

'गड्डलिका' संस्कृत मे 'भेड' को कहते है। हिन्दी में उस का तद्भव रूप 'गाडर' कविता मे कही-कही चलता है। परन्तु हिन्दी के सामान्य व्यवहार मे 'गाडर' नही, 'भेड' चलता है। 'भेड' तद्धित शब्द स्वतंत्र हिन्दी का है। यह 'भे भे' करती रहती है। इस अव्यक्त शब्द 'भे' से 'ड़' प्रत्यय करके 'भेड' शब्द बना लिया। परन्तु भेड पालने वाला—'गड़रिया'! यहाँ 'भेड़' की जगह 'गाडर' रूप आ गया। गाडर+इया='गडरिया'। भेड़ पालने वाला—'भेड़िया' नही। भेड को खा जाने वाला 'भेड़िया' बन चुका था; उस के बाद 'गड़रिया' बना। 'भेड़िया' तो शब्दान्तर है। 'खा जाने' के अर्थ मे 'इया' प्रत्यय 'भेड़' शब्द से और 'पालने' के अर्थ मे 'भेड़' की जगह 'गाड़र'।

स्वार्थिक प्रत्यय

तद्धित 'स्वार्थिक' प्रत्यय भी होते है। यानी प्रत्यय लग कर शब्दान्तर हो जाता है, पर अर्थान्तर नही होता। अर्थ वही बना रहता है।

'बकरी'—'बकरिया'

यह 'इया' प्रत्यय हिन्दी के पूरबी अञ्चल मे बहुत चलता है। संस्कृत 'कण्डिका' का 'कडिया' तद्भव रूप। यहाँ से 'इया' अलग कर के एक स्वतंत्र स्त्री-प्रत्यय। संस्कृत मे 'मुरली' और 'मुरलिका' एक ही चीज है। हिन्दी में 'मुरली' और 'मुरलिया' एक ही चीज है। परन्तु ये 'मुरलिया' आदि (स्वार्थिक) तद्धित शब्द ब्रजभाषा-कविता आदि मे ही प्रायः चलते हैं।

अल्पता-सूचक 'इया' प्रत्यय

'इया' प्रत्यय अल्पता में भी आता है। छोटा लोटा-'लुटिया'।

'ओ' को ह्रस्व 'उ' हो गया है। छोटा तंबू-'तँबुइया'। छोटी किताब-'कितबिया'। छोटा मठ-'मठिया'।

स्वार्थिक 'इया' की तरह यह अल्पार्थक 'इया' भी स्त्रीवर्गीय प्रत्यय है। 'आप का तंबू'-'आप की तँबुइया'।

इसी तरह किसी शब्द से कोई दूसरा शब्द तद्धित प्रत्ययों से बनता है। संस्कृत तद्रूप तद्धित शब्द भी चलते हैं। कोई-कोई विदेशी भाषा का भी तद्धित प्रत्यय हिन्दी में चलता है, जैसे 'दार':—

दावेदार-सूबेदार

दावा करनेवाला 'दावेदार'। 'आ' को 'ए' हो गया है। 'सूबे' का प्रशासक-'सूबेदार'। इसी तरह—'हवादार मकान' 'बैठकदार मकान।' 'हवा' स्त्रीवर्गीय शब्द है, इस लिए 'आ' को 'ए' नहीं हुआ। कभी-कभी ठेठ हिन्दी शब्द से भी 'दार' प्रत्यय होता है:—

'पानीदार घोड़ा'

'पानी' शब्द यहाँ लाक्षणिक है। यदि 'जल' के अर्थ मे ही 'पानी' हो, तो 'ऐल' प्रत्यय ('आ' पुंविभक्ति के साथ) लग कर:—

'पनैला दूध'

पानी मिला हुआ—'पनैला'। संज्ञा से विशेषण है। बन में रहने वाला-'बनैला सुअर'। माटी जैसे रंग का-'मटैला'।

'विष' संस्कृत शब्द से:—

विषैला फोड़ा
विषैले साँप
विषैली गैस

विषयुक्त—'विषैला'।

'वाला' संस्कृत के 'वान्' प्रत्यय का ही रूपान्तर है। 'वान्' का सस्वर रूप–'वान' हिन्दी प्रत्ययः—

गाड़ीवान-पीलवान

'न' को 'ल' और 'आ' पुंविभक्ति—'ला'।—'वाला' हिन्दी प्रत्ययः—

'गाड़ी वाला'—'इक्केवाला'—'टाँगे वाला'

बहुवचन में 'ए':—

गाड़ी वाले, इक्के वाले, टाँगेवाले

स्त्रीवर्ग में—'ई'

पीसने वाली, पछोरने वाली

'आ' को 'ए' हो जाता है—'इक्केवाला'। यह प्रत्यय प्रकृति से सटा कर भी चलता है, हटा कर भी।

इस तरह यह संक्षेप से तद्धित प्रकरण हुआ। सूत्र यह है कि किसी संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण या अव्यय से जो दूसरा शब्द किसी प्रत्यय के द्वारा बनता है, वह 'तद्धित है। प्रत्यय कल्पना स्वतः हो जाती है। प्रकृति का रूप समझते ही प्रत्यय सामने आ जाता है। फिर वर्णागम-वर्णलोप आदि समझ में आ ही जाता है।

दूसरा अध्याय

कृदन्त प्रकरण

क्रिया प्रकरण में हम ने क्रिया के 'तिङन्त' और 'कृदन्त' नाम के दो भेद कर के बताया था कि 'लड़का सोता है'—'लड़की सोती है' आदि में 'सोता'-'सोती' कृदन्त क्रियाएँ हैं और इसी तरह 'लड़का सोया है' 'लड़की सोई है' आदि मे 'सोया'-'सोई' कृदन्त क्रियाएँ हैं। ये 'त' तथा 'य' कृदन्त प्रत्यय हैं, जिन में 'आ' संज्ञा-विभक्ति लगने से संज्ञा ('लड़का' आदि) की तरह ही ऐसी क्रियाओ की स्थिति-प्रवृत्ति रहती है। 'लड़का पढ़ता है, खेलता है, सोता है' आदि से क्रिया की विधेयता प्रकट है। परन्तु यदि क्रिया विधेय रूप से न रहे, उद्देश्य-रूप से आए, तो फिर उसे 'क्रिया' न कहे गे। 'क्रिया' का मुख्य-धर्म (विधेयता) न रहने पर फिर उसे 'क्रिया' क्यो कोई कहे ? वैसी स्थिति में उसे 'विशेषण' या 'संज्ञा' कहें गे। उद्देश्य-रूप से रहने के कारण ये ('संज्ञा' या 'विशेषण') नाम ठीक हैं। जैसा काम, वैसा नाम। पंडित जी कपडे की दूकान करने लगे, तो सब लोग 'बजाज' कहे गे और मिठाई-पूड़ी बनाने-बेचने लगे, तो 'हलवाई' कहे गे। यों 'पंडित बजाज' और 'पंडित हलवाई' ठीक। इसी तरह 'कृदन्त क्रिया' 'कृदन्त विशेषण' और 'कृदन्त संज्ञा' शब्द ठीक हैं।

कृदन्त विशेषण

'घर जाता हुआ राम यहाँ ठहरा था'। 'ठहरा था' कृदन्त क्रिया है। ठहरने का ही विधेय-रूप से कथन है। परन्तु वाक्य में 'जाता हुआ' शब्द भी क्रियाश लिए हुए है। 'जाना' क्रिया स्पष्ट दिखाई देती

है। यह क्या है ? यह विशेषण है—'राम' का। वाक्य में 'जाने' की विधेयता नही है। वह उद्देश्यात्मक है—कर्ता का विशेषण है। हाँ:—

'यहाँ महीने भर से **ठहरा हुआ** राम काशी **चला गया**'

यहाँ 'चला गया' जरूर क्रिया है। 'ठहरा हुआ' विशेषण है। किसी मे विशेषता 'गुण' से आती है, या क्रिया से। ये क्रियारूप विशेषण हैं—'जाता हुआ' 'ठहरा हुआ'। क्रिया-रूप विशेषण होने के कारण इन के साथ 'कर्म' आदि भी रहते ही हैं। 'घर जाता हुआ' में 'घर' कर्म है और 'यहाँ ठहरा हुआ' मे 'यहाँ' अधिकरण है।

'चाकू से कलम बनाती हुई सुशीला ने मुझ से सब **कहा**'

इस वाक्य में 'कहा' क्रिया है। कहना ही विधेय है। 'बनाना' भी क्रिया है, पर ('बनाती हुई' विशेषण में) वह उद्देश्यात्मक है। परन्तु 'बनाना' आखर धातुज शब्द तो है ही। इस लिए 'कलम' उस का 'कर्म' और 'चाकू' 'करण' कारक साथ है। 'होना' सहायक रूप से है, परन्तु वह भी यहाँ 'क्रिया' नही है। 'जाता हुआ' 'पढ़ती हुई' आदि एक-एक विशेषण हैं।

इसी तरह :—

'सोया हुआ लड़का किस का है ?'

यहाँ 'सोया हुआ' विशेषण है। 'लड़का' विशेष्य है। 'पढता हुआ' विशेषण वर्तमान कालिक 'त' प्रत्यय से है और 'सोया हुआ' भूतकालिक 'य' से।

विशेषण द्विरुक्त कर दे, तो फिर 'होना' सहायक क्रिया की जरूरत नहीं रहती:—

'गाँव **जाती-जाती** मा कुर्ता सी गई'

'जाती-जाती' विशेषण है—'मा' का। 'पढता-पढता राम बातें कर लेता है।' 'पढता-पढ़ता' विशेषण है।

कृदन्त 'क्रिया-विशेषण' भी होते हैं:—

लड़कियाँ **पढ़ते-पढ़ते** सो गईं
लडका **पढ़ते-पढ़ते** सो गया
मै भी **पढ़ते ही पढ़ते** सो गया

सर्वत्र 'पढते-पढते' रहे गा। तीसरे उदाहरण में 'ही' अव्यय बीच मे आ गया है, पर 'पढते-पढते' एक ही क्रियाविशेषण है। सर्वत्र 'पढते', न कहीं 'पढता' और न 'पढती'। कर्ता पर ही 'सोने' का फल है, इस लिए उस के विशेषण भी बन कर:—

लडकियाँ **पढ़ती-पढ़ती** सो गईं
लडके **पढ़ते-पढ़ते** सो गए
लड़का **पढ़ता-पढ़ता** सो गया
मै भी **पढ़ता-पढ़ता** सो गया

'मेरी पढी हुई पुस्तक राम ले गया' इस वाक्य में 'ले गया' क्रिया है। 'पुस्तक' कर्म है और 'राम' कर्ता है। 'मेरी पढ़ी हुई' विशेषण है 'पुस्तक' का। इस मे 'मेरी' संबन्ध-रूप से 'पढने' का कर्ता है। यानी 'जो पुस्तक मै ने पढी थी, वह राम ले गया'। इस संयुक्त वाक्य में पुस्तक का पढना भी विधेय रूप से है, इस लिए 'पढी थी' क्रिया है। 'मेरी पढी हुई पुस्तक राम ले गया' में 'मेरी पढ़ी हुई' विशेषण है 'पुस्तक' का। विशेषण अंश का विच्छेद करने पर 'मेरी' संबन्धात्मक 'कर्ता' है। यदि विधेय रूप से क्रिया हो, तो कर्ता कारक कभी भी संबन्ध प्रत्यय के साथ गौण रूप मे न आए गा।

इसी तरह:—

'उड़न तश्तरी' 'कटखना कुत्ता'

आदि 'न' प्रत्यय से बने विशेषण है। उड़ने वाली तश्तरी–'उड़न तश्तरी'। काटखाने वाला कुत्ता—'**कटखना कुत्ता**'।

'कमाऊ' 'टिकाऊ' 'उपजाऊ' आदि 'आऊ' प्रत्यय से बने कृदन्त विशेषण है।

कृदन्त संज्ञाएँ

विशेषणो की ही तरह कृदन्त सज्ञाएँ भी विविध प्रत्ययो से बनती हैं।

'ओढना'—'बिछौना'

जो ओढा जाए, वह 'ओढना'–चादर आदि। 'ओढ' धातु से 'न' कर्म-प्रधान प्रत्यय और 'आ' पुंविभक्ति। जो बिछाया जाए, वह 'बिछौना'। 'बिछा' धातु से 'औना' कर्मप्रधान प्रत्यय।

'बुहारी' वह, जिस से बुहारते-झाडते हैं। 'बुहार' धातु से 'ई' करणप्रधान प्रत्यय। 'झाड़ू' मे 'ऊ' प्रत्यय है, करण-प्रधान। 'झाड़न' में 'न' प्रत्यय है, करण-प्रधान। जिस से झाड़ते हैं, वह 'झाड़न'—कपडे का टुकड़ा। एक 'झाड़न' कर्म-प्रधान भी है—झाड़ा हुआ कूड़ा-कर्कट—'झाड़न'।

'कतरनी' में 'न' प्रत्यय करण-प्रधान और फिर उस में 'ई' स्त्रीप्रत्यय। जिस से कतरते हैं, वह 'कतरनी'।

'बैठक' वह, जहाँ लोग मित्र-मडल के साथ बैठते है—अथाई, आस्थान, चौपाल। 'बैठक' मे अधिकरण-प्रधान 'क' प्रत्यय है—'बैठ' धातु से। 'बैठका' में आ पुंप्रत्यय लगा है; इस लिए पुंवर्ग।

बस, इसी तरह सब कृदन्त संज्ञाएँ समझिए, कोई कठिन बात नही है। 'बात' भी कृदन्त शब्द है, जो बताई जाए, वह 'बात'। 'बता'

संज्ञा। 'बताना' मूल क्रिया है। बात से 'बताना' नामधातु नहीं है। 'बता' धातु से 'बात' नाम है। गुड़ से गन्ना नहीं, गन्ने से गुड़ बनता है। इसी तरह 'गाँठना' क्रिया है, 'गाँठ' धातु है। इस धातु से 'गाँठ' स्त्रीवर्गीय संज्ञा है। 'ग्रन्थन'-'गाँठना' और 'ग्रन्थि'—'गाँठ'। 'बाँट' भी कृदन्त शब्द है—जिस से (तौल-तौल कर) बाँटा जाए, विभाजन-वितरण किया जाए, वह—'बाँट'। छटाँक, सेर; आदि लोहे के बने बटखरे। 'बाट' अलग है—'रास्ता'। 'बाँट' एक भाववाचक-संज्ञा अलग है—'हिस्सा-बाँट हो गया'।

भाववाचक संज्ञाएँ दो तरह की होती हैं—साधारण और विशेष।

साधारण भाववाचक संज्ञाएँ

कृदन्त साधारण भाववाचक संज्ञाएँ 'न' प्रत्यय से बनती हैं और 'आ' पुंविभक्ति से युक्त हो जाती हैं:—

उठना, बैठना, खाना, पढ़ना, पढाना

ये सब भाववाचक संज्ञाएँ हैं। उद्देश्य रूप से इन के प्रयोग होते हैं:—

सबेरे उठना अच्छा होता है
तुम्हारा सबेरे उठना मै देखता हूँ

'तुम्हारा' संबन्ध-रूप से कर्तृत्व है। दूसरे उदाहरण मे 'उठना' कर्म-कारक है 'देखने' का।

'सबेरे उठने से बुद्धि बढती है'

'उठने से' हेतु है, बुद्धि बढने में।

'**पढ़ने में** तेरा मन नहीं लगता'

'पढने मे' अधिकरण कारक है।

परन्तु:—

मुझे सबेरे **उठना है**

राम को काशी **जाना** है

यहाँ 'उठना' और 'जाना' क्रियाएँ हैं—विधेयात्मक हैं; उद्देश्यात्मक नही हैं। उद्देश्यात्मक होने पर ही 'संज्ञा' की संज्ञा मिले गी। विधेयता होने पर 'क्रिया'-पद।

विशेष भाववाचक संज्ञाएँ

विशेष भाववाचक संज्ञाएँ हैं—

'गठन' 'उठान' 'रीझ' 'खीझ' आदि।

इस का 'गठन' अच्छा है। 'उठान खूब है'। उस की 'रीझ' निराली है। तेरी 'खीझ' से भी वे खुश होते हैं। ये विशेष भाववाचक संज्ञाएँ हैं। 'रीझना' और 'रीझ' मे तथा 'खीझना' और 'खीझ' में अन्तर है, यद्यपि हैं दोनो तरह की संज्ञाएँ भाववाचक ही। मीठा रस भी कई तरह का होता है। सब के अवान्तर भेद होते हैं; उसी तरह भाववाचक संज्ञा के भी।

यह हुआ कृदन्त-प्रकरण। 'तद्धित' तो 'नाम' ('संज्ञा') से, सर्वनाम से, विशेषण से तथा अव्यय से शब्दान्तर की सृष्टि करता है; यानी 'उद्देश्यात्मक' शब्दो से तद्धित-प्रत्यय होते हैं। 'नाम' से 'धातु' बनानेवाला 'आ' भी तद्धित-प्रत्यय है। 'नाम' को 'धातु' बना देता है। इधर कृदन्त प्रत्यय 'धातु' से 'नाम' बना देते हैं।

'बताना' क्रिया की धातु है—'बता'। उस से 'बात' संज्ञा। इस 'बात' संज्ञा से पूरब में 'बतियाना' क्रिया नामधातु की। बात करना—'बतियाना'। 'आ'-प्रत्यय दिखाई दे रहा है—नामधातु का। 'सूखता है' क्रिया की धातु 'सूख'। इस से पूरब में विशेषण भी 'सूख'। 'सूख

पेडु ठाढ है'—सूखा पेड़ खड़ा है। इस 'सूख' विशेषण से 'सुखा' नाम धातु—'आ' प्रत्यय से। 'नाजु सुखाति है'। 'नाजु सूखति है' यो मूल क्रिया भी चलती है।

विशेषणो से नामधातु प्रायः बनती रहती है। 'पानी मीठा है'। स्वाभाविक मिठास है। परन्तु किसी कारण विशेष मिठास जान पडे, तो नाम धातु से:—

'आँवले खाकर पानी (पीने से) **मिठाता है**'

मीठा लगता है—'मिठाता है'। यहाँ पानी का नैसर्गिक मिठास नही, नैमित्तिक है। आँवले खाने से मीठा लगता है। इसी तरह शब्दो के प्रयोग-भेद होते हैं और प्रयोग-भेद से नाम-भेद।

तीसरा अध्याय

समास प्रकरण

'समास' से भी यौगिक शब्द बनते हैं। प्रकृति-प्रत्यय के योग से 'तद्धित' और 'कृदन्त' यौगिक शब्द बनते हैं। संज्ञा के साथ संज्ञा, संज्ञा के साथ विशेषण, विशेषण के साथ विशेषण तथा अव्यय के साथ संज्ञा के योग से सामासिक 'यौगिक' शब्द बनते हैं। तद्धित-कृदन्त मे प्रकृति प्रधान होती है, प्रत्यय अप्रधान होता है। समास में कभी कोई पद प्रधान होता है, कभी कोई। कभी पूर्वपद अप्रधान होता है, कभी उत्तरपद। कभी दोनो पद प्रधान होते हैं और कभी (समास में आए हुए पदो में से) कोई भी प्रधान नहीं होता। यह प्रधानता-अप्रधानता लोक-व्यवहार वाली नहीं है। भाषा-व्याकरण मे प्रधानता-अप्रधानता शब्द-प्रयोग की दृष्टि से होती है। लोक-व्यवहार मे 'राजा' प्रधान है और उस का सेवक अप्रधान है। परन्तु भाषा में 'राजसेवक आया है' प्रयोग हो गा, तो 'राजसेवक' इस (सामासिक प्रयोग) में 'सेवक' प्रधान समझा जाए गा; क्योंकि उसी के बारे मे कुछ कहा-सुना जा रहा है, राजा के बारे मे नही। 'राजा' से तो उस का संबन्ध भर है। वह यहाँ अप्रधान है। यह सब अभी आगे मालूम हो गा।

'समास' के चार भेद

उसी प्रधानता-अप्रधानता को ले कर 'समास' के चार प्रमुख भेद हैं—१—तत्पुरुष-समास २—द्वन्द्व-समास ३—बहुब्रीहि-समास और ४—अव्ययीभाव-समास।

ये 'तत्पुरुष' आदि नाम संस्कृत-व्याकरण से हिन्दी को प्राप्त

हुए हैं और यहाँ ये 'पारिभाषिक' शब्दो के रूप में गृहीत हैं। वैसे ये हैं यौगिक शब्द—संस्कृत-पद्धति से। 'तत्पुरुष' का विग्रह है—'तस्य पुरुषः'। उस का आदमी—'तत्पुरुष'। यानी 'तत्पुरुष' के ढंग के समास एक वर्ग में, उन का नाम 'तत्पुरुष समास'।

जोडे को संस्कृत में 'द्वन्द' कहते हैं—बराबरी का जोड़—'द्वन्द्व'। फिर 'द्वन्द-युद्ध' हुआ। जहाँ दोनो पद बराबरी के हो, दोनो प्रधान, वह 'द्वन्द-समास'। '**भाई बहन** बैठे हैं'। यहाँ दोनो बराबर हैं। दोनो के बैठने की बात है और इसी लिए क्रिया मे बहुवचन है।

'बहुव्रीहि' का अर्थ है—'बहुत धान वाला' (कोई व्यक्ति)। यहाँ न 'बहु' के बारे मे कुछ कहना है, न धान के बारे में ही। जिस के धान बहुत है, उस व्यक्ति के बारे मे कहना है–'बहुव्रीहि सदा निश्चिन्त रहता है'। न 'बहु' निश्चिन्त, न 'व्रीहि' ही निश्चिन्त, तीसरा ही (कोई व्यक्ति) निश्चिन्त है। सो, 'बहुव्रीहि' जैसे समासो का नाम 'बहुव्रीहि-समास' रख दिया। एक श्रेणी बना दी।

कुछ सामासिक शब्द ऐसे होते हैं, जिन की स्थिति-प्रवृत्ति अव्ययो की तरह रहती है। ऐसे समास का नाम 'अव्ययीभाव' रख दिया गया। अव्यय न होने पर भी अव्यय–जैसे हो जाएँ, वे 'अव्ययीभाव'।

यो 'तत्पुरुष' आदि का योगार्थ है। परन्तु हिन्दी में 'तत्' की जगह 'वह' शब्द चलता है, इस लिए 'तत्पुरुष' को हम 'पारिभाषिक' शब्द के रूप मे यहाँ ले रहे हैं और इसी तरह 'द्वन्द्व' आदि को भी। ब्रजभाषा तथा अवधी आदि में 'तत्' के तद्भव रूप 'ता'–'तो' आदि चलते हैं– 'ताहि' 'तोहि'। 'सः' की जगह वहाँ 'सो' भी है। परन्तु 'तत्' नही है। इसीलिये वैसा कहा गया। 'तत्पुरुष' संस्कृत का सामासिक पद है। हिन्दी में–हिन्दी का—कोई भी सर्वनाम समास में कभी बँधता ही नहीं।

सार्वजनिक चीज किसी एक से बँध कैसे जाए ! संज्ञा, विशेषण तथा अव्यय समास में बँधते रहते हैं ।

तत्पुरुष समास : जिस समास में उत्तरपद प्रधान हो, वह 'तत्पुरुष' समास । इस परिभाषा के अनुसार आप सर्वत्र 'तत्पुरुष' समास का निर्णय कर ले ।

तत्पुरुष समास के पूर्वोत्तर पदो में:—

१—भेदक और भेद्य
२—विशेषण और विशेष्य
३—निषेधक और निषेध्य
४—उपमान और उपमेय

यों अप्रधान और प्रधान पदो की स्थिति रहती है ।

१—भेदक और भेद्य

राजा का सेवक—समास में **'राजसेवक'** । 'राजा का सेवक' मुक्त प्रयोग है । 'राजसेवक' समास हो गया । 'का' की बचत हो गई । 'राजसेवक' का विग्रह है—'राजा का सेवक' । 'राजा का सेवक' का समास है—'राजसेवक' । यह संस्कृत समास का रूप है । हिन्दी मे तो 'राज' कहते हैं मकान आदि बनाने वाले कारीगर को । यहाँ 'राजा' दूसरा प्रातिपदिक है । राजा का बाजार–'राजा बाजार' । राजा की मंडी—'राजा मंडी' ये हिन्दी समास हैं । 'राजपुरुष' जैसे शब्द संस्कृत भाषा से—संस्कृत व्याकरण के अनुसार बने बनाए—तद्रूप हिन्दी ने लिए हैं और उन की बनावट वही के अनुसार यथाशक्य समझा दी जाती है ।

'राजपुरुष' में 'पुरुष' प्रधान है और 'राजामंडी' में 'मंडी' प्रधान है । इन्हीं के अनुसार विशेषण तथा क्रिया रहे गी—

'राजपुरुष **अच्छे भी होते हैं**'
'राजामंडी मै ने **भी देखी है**'

'राजा' से कोई मतलब नहीं। खुले प्रयोग में भी 'भेद्य' प्रधान होता है—भेदक सदा 'भेद्य' के अधीन रहता है। भेद्य के अनुसार ही भेदक अपने वर्ग-वचन रखता—बदलता है! उस की स्थिति-प्रवृत्ति दूसरे के अधीन है:—

'**राजा का** आदमी'
'**राजा के** लडके'
'**राजा** की लड़की'

आदमी, लड़के तथा लड़की 'भेद्य' हैं। उन्ही के अनुसार भेदक—'राजा का' 'राजा के' 'राजा की' हैं। भेद्य प्रधान हैं—स्वतंत्र हैं। समास में आ कर भी भेदक इसी तरह अप्रधान रहता है। 'उत्तरपद' यानी 'भेद्य' प्रधान रहता है। यही 'तत्पुरुष' समास है।

अच्छी पनचक्की है

यहाँ 'अच्छी' विशेषण 'चक्की' के अनुसार है। उसी की प्रधानता है। पूर्व-पद अप्रधान है। उस की ओर कोई भी शब्द देखता नही है:—

पानी से चलने वाली चक्की—'**पनचक्की**'

'चलनेवाली' मध्यम पद का लोप कर के 'पानी' और 'चक्की' का समास :—'पनचक्की'। 'पानी' का 'पन' हो गया है।

२—विशेषण-विशेष्य

विशेषण और विशेष्य का समास भी उत्तरपद-प्रधान होता है, इस लिए यह भी उस परिभाषा के अनुसार—'तत्पुरुष' है।

विशेष्य (भेद्य की ही तरह) प्रधान होता है। विशेषण उसी के अधीन रहता है। देखिए:—

हरा कपड़ा
हरे पेड़
हरी साड़ी

कपड़ा, पेड और साड़ी विशेष्य हैं, प्रधान हैं। 'हरा' रंग बेचारा इन्ही के स्वरूपो के अनुसार अपने को रखता-बदलता है—हरा, हरे, हरी। विशेष्य के अधीन विशेषण की स्थिति-प्रवृत्ति है। प्रधान विशेष्य है, जो समास मे 'उत्तर-पद' के रूप मे रहता है। हिन्दी मे विशेषण विशेष्य प्रायः मुक्त रहते हैं। हिन्दी की प्रकृति समास-बन्धन बहुत अधिक पसन्द नही करती। परन्तु संस्कृत के विशेषण-विशेष्य समास में बॅध कर यहॉ यथावश्यक तद्रूप चलते हैः—

'**नीलाकाश** तना था ऊपर'
'**सत्पुरुषो** का जोवन देखिए'

(नील+आकाश=) 'नीलाकाश' और 'सत्पुरुष' विशेषण-विशेष्यो के समास हैं। विशेष्य की (उत्तर-पद की) प्रधानता है, इस लिए 'तत्पुरुष' समास।

संख्यावाचक विशेषणो का हिन्दी-प्रकृति भी समास ग्रहण करती है। ऐसे समास यहॉ प्रायः 'समाहार' मे होते है और तब पुंवर्ग एक-वचन या स्त्रीवर्ग-एकवचन प्रयोग होता हैः—

'तिराहा' 'चौराहा'

'तीन' तथा 'चार' शब्द संख्यावाचक हैं, जिन के 'ति' तथा 'चौ' रूप ऊपर समास मे दिखाई दे रहे है। 'राह' एक विदेशी भाषा का स्त्री-वर्गीय शब्द है, जो हिन्दी मे चलता है। 'राह' उत्तर पद है, प्रधान है;

परन्तु प्रयोग पुंवर्ग-एकवचन है—'तिराहा' 'चौराहा'। यह 'समाहार' के कारण। 'समाहार' का मतलब–मेल, जमघट। तीन राहो का मेल–'तिराहा'। चार राहो का मेल या जमघट–'चौराहा'। 'राम चौराहे पर खड़ा था'। यहाॅ 'राह' की ही प्रधानता है, किसी अन्य पद की नही। समाहार मे 'आ' पुंप्रत्यय आ लगा है; इस लिए पुंवर्ग-प्रयोग। इसी तरहः—

'सतनजा'

सात नाजो (अन्नो) का समाहार—'सतनजा'। 'सात' को 'सत' हो गया है और समासान्त 'आ' पुंप्रत्यय। समाहार में एकवचन है।

संस्कृत में 'समाहार' नपुंसक-वर्ग और एकवचन में रहता है–'पञ्च-पात्रम्'। पाॅच पात्रो का समाहार (समूह) 'पञ्चपात्रम्'। कभी स्त्रीवर्ग मे भी सख्यापूर्वक तत्पुरुष 'समाहार' रहता है—'पंसेरी'—पाॅच सेरो का समाहार—'पंसेरी'। 'पाॅचि' को 'पन्' या 'प' हो जाता है और समासान्त स्त्रीवर्गीय—'ई' प्रत्यय। संस्कृत मे भी स्त्रीवर्गीय एकवचन समाहार में रहता है—'पञ्चवटी' 'त्रिवेणी'। पाँच वट वृक्षो का समाहार 'पञ्चवटी' और तीन वेणियो (प्रवाहो) का समाहार 'त्रिवेणी'। वटो तथा वेणियो की प्रधानता है।

३—उपमान—समास

जिस से उपमा दी जाए, उसे 'उपमान' कहते हैं—'सुधा के समान मधुर ये फल हैं'। यहाॅ 'सुधा' उपमान है। फल 'उपमेय' हैं। मधुरता 'समान धर्म' दोनो मे हैं, जिस के कारण उपमा दी गई है। वैसे 'मधुर' विशेषण है 'फल' का, परन्तु वाक्य मे अपनी विशेष स्थिति है उसकी। 'फल' में विशेषता प्रकट होती है। मधुरता का वर्णन है—फलो की मधुरता का। 'सुधा' केवल समानता बतलाने के लिए गृहीत

है; अन्यथा यहाँ उस का कोई मतलब नहीं—अप्रधान (अप्रकृत) शब्द है। समास कर के—

सुधामधुर ये फल हैं

यहाँ उपमान ('सुधा') का 'समान धर्म' ('मधुर') से समास हो गया—सुधा के समान मधुर—'सुधामधुर'। 'मधुर' (अन्तिम पद) प्रधान है।

४—निषेधक निषेध्य

जिस का निषेध किया जाए, वह 'निषेध्य' और जो निषेध करे, वह 'निषेधक'। निषेधक की स्थिति विशेषण जैसी होती है—अप्रधान। न ब्राह्मण—'अब्राह्मण' और न आस्था 'अनास्था'। संस्कृत में 'न' का व्यंजन उड़ जाता है, 'अ' मात्र रह जाता है, जब किसी व्यंजनादि शब्द के साथ उस का समास होता है—अब्राह्मण, अव्यापारी। यदि स्वरादि शब्द के साथ समास हो, तो वर्ण-व्यत्यय हो जाता है—स्वर 'अ' पहले आ जाता है और व्यंजन 'न्' पीछे चला जाता है—'अन्'+आस्था='अनास्था' और 'अनाचार' आदि। इसी 'अन्' को अकारान्त (सस्वर) कर के हिन्दी अपने व्यंजनादि शब्दो में भी लगाती है :—

'**अनपढ़** ब्राह्मण'
'**अनदेखी**-अनसुनी बात'

कभी 'अ' भी—'**अपढ़** गँवार'

'अन्यपद' प्रधान हो, अन्तिम पद प्रधान न रहे, तो 'तत्पुरुष' नहीं, बहुब्रीहि - समास हो गा—'अतृष्ण पुरुष सुखी रहता है'। 'अतृष्ण'—जिस के तृष्णा न हो! यहाँ 'तृष्णा' प्रधान नही है। परन्तु 'अतृष्णा सुख का मूल है।' न तृष्णा—'अतृष्णा'–तृष्णा का अभाव। यह तत्पुरुष समास है।

२—द्वन्द्व समास

'और' 'एवं' 'तथा' आदि के अर्थ मे 'द्वन्द्व' समास होता है और इस में समस्यमान सभी पद प्रधान रहते हैं—कोई भी अप्रधान नही—

हमारे **मा-बाप** आने वाले हैं
अपने **भाई-बहनों** को बुलाओ

मा और बाप—'मा-बाप'। दोनो प्रधान हैं। इसी लिए 'आने-वाले हैं' बहुवचन है। इसी तरह 'भाई-बहन' में दोनो प्रधान हैं—'ओं' विकरण इसी लिए है। ऐसी जगह क्रिया तथा विशेषण प्रायः पुंवर्ग मे आते हैं। स्त्री-पुरुष दोनो के लिए 'सामान्य' पुंवर्ग-प्रयोग।

परन्तु द्वन्द्व-समास का जब 'समाहार'—प्रयोग होता है, तो एकवचन ही रहता है और 'उत्तरपद' के अनुसार पुंवर्ग या स्त्रीवर्ग चलता है:—

'मै ने **दाल-भात** खाया है'

'दाल' और 'भात' का द्वन्द्व-समास है। दो चीजे हैं। परन्तु 'समाहार'—द्वन्द्व है; इस लिए एकवचन-प्रयोग है। दाल और भात मुहॅ में मिल कर एक साथ पेट मे जाते–पहुँचते है। क्रिया के साथ मिल कर अन्वय है। 'इतरेतर द्वन्द्व' में बहुवचन रहता है—'भाई-बहन आ गए'। बहुवचन और 'सामान्य' पुंवर्ग-प्रयोग।

'समाहार द्वन्द्व' मे स्त्रीवर्गीय शब्द अन्त मे हो, तो उसी के अनुसार क्रिया तथा विशेषण रहे गे, पर एकवचन ही:—

'राम ने आज **दाल-रोटी** खाई है'
'गोविन्द ने **साग-रोटी** खाई है'

'दाल' और 'रोटी' दोनो स्त्रीवर्गीय शब्द हैं। समाहार द्वन्द्व है।

'साग-रोटी' में 'साग' पुंवर्गीय शब्द है; पर क्रिया 'रोटी' के अनुसार स्त्रीवर्गीय एकवचन है—'खाई है'।

इसी तरह सब समझिए।

बहुव्रीहि समास

सात मंजिलें जिस मकान में हों, वहः—

'सतमंजिला मकान'

यह बहुव्रीहि समास है। 'सतमंजिला' में न 'सात' प्रधान है, न 'मंजिल' ही। अन्य पद (मकान) प्रधान है। 'मंजिल' शब्द स्त्री वर्गीय है, परन्तु बहुव्रीहि मे पूरा पद 'सतमंजिला' पुंवर्गीय है। 'सात' को 'सत' हो गया है और समासान्त में 'आ' पुंप्रत्यय आ लगा है—'संतमंजिला मकान'। बहुवचन प्रधान (विशेष्य) हो, तोः—

'तिमंजिले मकबरे'

स्त्रीवर्गीय 'अन्यपद' (विशेष्य) हो, तोः—

'तिमंजिली इमारत'

इसी तरह सात-खंड जिस इमारत में हो, वहः—

'सतखंडी इमारत'

सात खंड जिस महल मे हों, वहः—

'सतखंडा महल'

'सतखंडी महल' कहें, तो 'सतखंड' तत्पुरुष समास। 'सात' विशेषण और 'खंड' विशेष्य। 'खंड' शब्द संज्ञा है। 'सतखंड' भी संख्या-विशिष्ट संज्ञा है। इस संज्ञा से 'ई' तद्धित प्रत्यय कर केः—

'सतखंडी महल'-'सतखंडी दरवाजे'

'**निर्धन** कुटुम्बी' में 'निर्धन' बहुब्रीहि समास है—नहीं है जिस के धन, वह 'निर्धन'। न निषेधक (निर्) मे प्रधानता है, न निषेध्य (धन) में ही। इसी तरहः—

'**सकुटुम्ब** आप पधारिए'
'**सपत्नीक** पंडित जी आए थे'

यहाँ भी बहुब्रीहि समास है—कुटुम्ब के सहित—'सकुटुब'। पत्नी के सहित–'सपत्नीक'। 'सकुटुम्ब ब्राह्मण' 'सपत्नीक राज्यपाल'। 'अकुटुम्ब' और 'अपत्नीक' भी बहुब्रीहि है।

'दनुज **सकोप**' '**अकोप** रघुनन्दन' यहाँ 'सकोप' 'अकोप' भी बहुब्रीहि समास हैं। जिस के कोप न हो, वह 'अकोप' और जिस के कोप हो, वह 'सकोप'।

परन्तु 'सब मे **अनास्था** अच्छी नही' यहॉ 'अनास्था' तत्पुरुष समास है—न आस्था—'अनास्था'। 'आस्था' का निषेध है, वही प्रधान है। 'अकुपित ऋषि' मे 'अकुपित' तत्पुरुष समास है—न कुपित—'अकुपित'। 'अकोप ऋषि भी सकोप तब हो गए' यहॉ 'अकोप' 'सकोप' में बहुब्रीहि समास है—जिस में कोप न हो, वह 'अकोप'।

'शिव का **नीलकंठ** अति सुन्दर'

यहॉ 'नीलकठ' तत्पुरुष समास है—विशेषण-विशेष्य है—'नील' और 'कंठ'।

परन्तुः—

'**नीलकंठ** हो उठे क्रुद्ध,
ले कर त्रिशूल तब प्रलयंकर।'

यहाँ 'नीलकंठ' बहुव्रीहि समास है—नील (नीला) जिन का कंठ है, वे 'नीलकंठ'—शंकर।

हिन्दी के 'अपने' शब्दो मे विशेषण-विशेष्य का समास नही के बराबर होता है। और, संस्कृत तद्रूप शब्द भी यहाँ अलग ही अलग चलते हैं—'शिव का नील कठ अति सुन्दर'। केवल समझाने के लिए 'नीलकंठ' बतलाया है। हाँ, 'नीलाकाश' आदि मे समास चलता है।

'**अधपिसी** दवा'

'**अधकुचली** गिलोय'

ये तत्पुरुष समास हैं—कुछ पिसी, कुछ न पिसी—'अधपिसी'।

अव्ययीभाव समास

जो सामासिक पद अव्यय की तरह रहता है, उसे 'अव्ययीभाव' समास कहते हैं। इस मे कभी एक पद अव्यय होता है, दूसरा संज्ञा आदि और कभी कोई भी अव्यय नही रहता।

प्रतिव्यक्ति पाँच सौ रुपए

आप की **आज्ञानुसार**

अपनी **इच्छानुसार**

'प्रतिव्यक्ति' में प्रथम पद अव्यय है। उपसर्गों की गिनती भी अव्ययो मे ही है। 'आज्ञानुसार' मे उत्तरपद अव्यय है—'अनुसार'। हिन्दी में 'अनुसार' अव्यय है।

आप की **कुसुमलता**

आप के **लताकुसुम**

ये 'तत्पुरुष' समास हैं; क्योकि उत्तर-पद प्रधान हैं—

आपकी कुसुम**लता** देखी

आपके लता **कुसुम** देखे

परन्तुः—

'आप का **आज्ञानुसार** देखा'

नहीं होता !

'आप का **लतामंडप** अच्छा है'

'मंडप' प्रधान है, 'अच्छा है'। परन्तुः—

'आप का **आज्ञानुसार अच्छा** है'

कोई नही कहता। 'अनुसार' संज्ञा नही है, किसी का नाम नही है। इस लिए 'आज्ञानुसार' 'इच्छानुसार' आदि 'अव्ययीभाव' समास हैं।

संस्कृत के क्रियाविशेषणः—

सहर्ष, धन्यवादपूर्वक, हर्षपूर्वक

इत्यादि भी अव्ययीभाव समास ही हैं, जो क्रिया-विशेषण के रूप मे आते हैं—

'**सहर्ष** आप ले जाएँ'
'**धन्यवादपूर्वक** मैने ग्रहण किया'
'**हर्षपूर्वक** उन्होने पुस्तक दी'

ये सदा इसी रूप मे रहेंगे। कभी कोई परिवर्तन न होगा। 'प्रतिव्यक्ति' 'आज्ञानुसार' 'सहर्ष' आदि सदा 'अव्यय' रहेंगे। अव्यय बन गए यो समास मे आ कर ये शब्द। यही 'अव्ययीभाव' का मतलब है।

'दिन भर मेहनत करता है'

यह 'दिन भर' अव्ययीभाव समास ही है। हिन्दी मे समस्त पदों की शिरोरेखा कभी कभी विच्छिन्न भी रहती है।

'मैं **सहर्ष** पुस्तक दे सकता हूँ' 'तुम सहर्ष पुस्तक ले जाओ' आदि मे 'सहर्ष' क्रियाविशेषण है; सदा इसी रूप मे रहे गा। अव्ययीभाव समास है।

परन्तु यदि विशेषण रूप से आए, तो फिर 'बहुव्रीहि' समास समझिए गा:—

'सपुत्र लक्ष्मी आई है'
'आप **सपत्नीक** पधारिए गा'

'सपुत्र' विशेषण है 'लक्ष्मी' का, इस लिए स्त्रीवर्ग-प्रयोग है; जैसे 'मधुर खीर'। इसी तरह 'सपत्नीक' शब्द 'आप' का विशेषण है। 'अन्यपद' (विशेष्य) प्रधान है। 'सहर्ष आइए' मे 'सहर्ष' स्वतंत्र है। हाँ, क्रिया का विशेषण जरूर है, जिस मे कोई अपना वर्ग-वचन होता ही नहीं है।

'मैं ने **दुबारा** पुस्तक पढी'

यहाँ 'दुबारा' अव्ययीभाव ही समास है—क्रियाविशेषण है। इसी तरह 'तिबारा'। दूसरी बार 'दुबारा' और तीसरी बार 'तिबारा'। 'दूसरी बार' 'तीसरी बार' भी क्रिया-विशेषण हैं। 'बार' के विशेषण हैं—'दूसरी' 'तीसरी'। पूरे 'दूसरी बार' 'तीसरी बार' क्रियाविशेषण हैं। समास में 'आ'—पुंप्रत्यय लग कर—'दुबारा' 'तिबारा'। 'दो बार मैं ने यह पुस्तक पढ़ी' 'तीन बार पढी' इन के समास न हो गे—इसी तरह मुक्त प्रयोग हो गे। 'दुबारा' अव्ययीभाव है और 'दुराहा' 'तिराहा' तत्पुरुष है। संख्यात्मक विशेषण समाहार में है—दो राहों का समाहार—'दुराहा'। 'दुबारा' आदि मे ऐसा समाहार नही है। 'इकबारगी रुपए दे दो' यहाँ 'एक ही बार मे'—'इकबारगी' क्रिया-विशेषण है, अव्ययीभाव। एक को 'इक' और 'गी' समासान्त प्रत्यय। 'इकबारगी' क्रिया-विशेषण है।

'चौबारा'

अलग चीज है, बहुव्रीहि समास है—चार जिस मे बार (दरवाजे) हो, वह 'चौबारा'—कमरा।

'तिदरी'

तीन जिस मे दर (दरवाजे) हो, 'तिदरी'—बैठक।

'दुसूती'

दुहरा जिस में सूत लगा हो, वह 'दुसूती'—मोटी चादर। ये 'चौबारा' 'तिदरी दुसूती' आदि बहुव्रीहि समास हैं।

'चौराहा'—तत्पुरुष समास, समाहार
'चौबारा'—बहुव्रीहि समास
'दुबारा'-'तिबारा'—अव्ययीभाव समास

'चौबारे में बैठा है' की तरह 'दुबारे में' 'तिबारे मे' आदि प्रयोग नहीं होते। 'चौबारे' मे 'अन्यपद' प्रधान है। एक तरह की बैठक 'चौबारा'। न 'चार' ('चौ') प्रधान है, न 'बार' (दरवाजा) ही प्रधान है। 'चौराहा' मे 'राह' प्रधान है। 'चार' तो विशेषण मात्र है—अप्रधान। 'दुबारा' 'तिबारा' मे अन्तिम पद प्रधान है—'दूसरी बार—'दुबारा'। अव्ययीभाव-समास में सदा पूर्वपद ही प्रधान नहीं रहता।

'दुधारा'

यहाँ अव्ययीभाव नहीं ! बहुव्रीहि समास है—दोनो ओर जिस मे धार हो, वह 'दुधारा'—खाँड़ा। न 'दो' प्रधान है, न 'धार' प्रधान है। अन्य-पद प्रधान है। प्रधान है—'खाँडा'। विशेषण मात्र के भी प्रयोग स्वतंत्र होते हैं, जैसे 'संस्कृत हम पढ रहे हैं'। 'संस्कृत भाषा'

की जगह विशेषण मात्र 'संस्कृत'। इसी तरह 'दुधारा' आदि स्वतंत्र चलते हैं।

बस, 'समास' के संबन्ध में इतनी जानकारी छात्रों के लिए पर्य्याप्त है।

———

पाँचवाँ खण्ड

वाक्य-गठन

पूर्व के चार खण्डों में वाक्य-रूपी इमारत की पूरी सामग्री आ गई। ईंट, चूना, सीमेंट, किवाड़, कील-काँटे, आदि सब चीजें तयार हैं—इमारत खड़ी कर लीजिए। जब उद्देश्य, विधेय, विशेषण, अव्यय आदि सभी तरह के शब्द उपस्थित हैं, तो वाक्य बनने-बनाने में क्या देर! परन्तु एक बात जरूर है। सामग्री को एक व्यवस्था से ही जमाना है! ईंट-चूना आदि सामग्री ही तो इमारत नहीं है न! जब तक व्यवस्थित ढँग से उस का उपयोग न किया जाए, किस काम का वह सब! कारीगर जितना अच्छा हो गा, इमारत उतनी ही अच्छी बने गी। परन्तु काम-चलाऊ घर-झोपड़ी तो सभी बना लेते हैं। वे ही नाम, सर्वनाम और क्रियाएँ, जो हम सब लोग काम में लाते हैं, एक कुशल शब्दशिल्पी के द्वारा प्रयुक्त होकर वाक्य से 'काव्य' बन जाते हैं।

हम यहाँ 'वाक्य' की चर्चा कर रहे हैं; 'कु' और 'सु' विशेषण लगाए बिना। वह सब अलग चर्चा का विषय है। हिन्दी की वाक्य-विन्यास पद्धति बहुत सरल है—

राम सो रहा है

राम पुस्तक पढ रहा है

राम कोयले से पानी गरम कर रहा है

साधारणतः कर्ता पहले रहता है। सकर्मक क्रिया हो, तो कर्ता के अनन्तर (क्रिया से पहले) कर्म आता है। 'करण भी देना हो, तो कर्म से पहले 'करण' का प्रयोग होता है।

राम मोहन को पुस्तक देता है

'कर्म' प्रायः क्रिया के पास ही रहता है। 'सम्प्रदान' कर्ता-कारक के अनन्तर है। और,

राम उस कुए से पानी लाता है

यों 'अपादान' भी कर्ता के अनन्तर।

राम चटाई पर सब को बैठाता है
राम स्वयं पृथ्वी पर बैठता है

यों अधिकरण भी कर्ता के अनन्तर आता है। परन्तु हिन्दी का गठन ऐसा है कि पद-क्रम बदल जाए, तो भी वाक्यार्थ समझने में कोई भ्रम-सन्देह नहीं होता। साधारणतः उद्देश्य पहले और विधेय बाद में आता है। विधेयता क्रिया पर होती है, इस लिये उस का पर-प्रयोग होता है। परन्तु किसी पद पर अधिक जोर देना हो, तो उस का प्रयोग 'परात्पर' हो जाता है—क्रिया से भी परे :—

भई, सितार तो बजाता है राम !

यानी राम सितार बजाने में सब से आगे है। परात्पर-प्रयोग से यह मतलब निकला।

रोटी तो अच्छी सिंकती हैं लकड़ी की आग से ही;
वैसे बना भले चाहे जैसे लो !

'लकडी की आग' पर जोर देना है, इस लिए क्रिया के भी अनन्तर उस का प्रयोग है।

इसी तरह किसी भी पद का परात्पर प्रयोग हो जाता है, यदि उस पर जोर देना अभीष्ट हो।

'यह' का प्रयोग समीपस्थ के लिए और 'वह' का दूरस्थ के लिए होता है—

यह राम है, जो बैठा पढ़ रहा है
वह गोविन्द दिखाई दे रहा है

समीपता मन से भी होती है :—

"भला महाराणा प्रताप और बादशाह अकबर की शक्ति का क्या मुकाबला ! इधर मुट्ठी भर स्वतंत्रताप्रेमी साथी और उधर अनन्त सैन्य-शक्ति !"

महाराणा प्रताप के लिए 'यह' से बना 'इधर' अव्यय है और अकबर के लिए 'वह' से बना 'उधर'। यह मानसिक समीपता और दूरी के हिसाब से।

किसी संज्ञा का उल्लेख कर के तुरन्त उस का परामर्श करना हो, तो 'वह' शब्द आता है। हम शीर्षक देते हैं:—

महाराणा प्रताप और **उन का** स्वातंत्र्य-प्रेम
महात्मा गान्धी और **उन के** सिद्धान्त
महमूद गजनवी और **उस के** अत्याचार

यहाँ—ऐसी जगह—'यह' से परामर्श न हो गा, क्योंकि शीर्षक मात्र हैं। अभी सामीप्य की बात ही नही है।

'राम और **उस के** चारो लड़के काशी गए'

यहाँ भी 'उस के' ही रहे गा, 'इसके' नही ! इस का कारण है।

"महाराणा प्रताप के छोटे भाई पृथ्वीसिंह तेज स्वभाव के थे; परन्तु भ्रातृप्रेम और कुल-गौरव के प्रति आकर्षण कम न था। जब महाराणा प्रताप और **उन के** बाल-बच्चे बनो में भटक रहे थे, एक घटना घटी।"

यहाँ 'उन के' न दे कर 'इन के' प्रयोग कर देने से भ्रम हो जाए गा। 'इन के' का अर्थ हो जाए गा—'पृथ्वीसिंह के'। इसी तरह

के भ्रम या सन्देह को बचाने के लिए व्यवस्था है कि एक ही वाक्य मे 'और' या 'तथा' 'एवं' आदि अव्ययो के अनन्तर तुरन्त प्रयुक्त संज्ञा का परामर्श भेदक के द्वारा करना हो, तो 'वह' शब्द आता है। संस्कृत मे भी यही पद्धति है। 'शङ्कराचार्यस्तन्मतञ्च' होता है—'एतन्मतञ्च' ऐसी जगह न हो गा।

संयुक्त वाक्य

भाषा मे एकाधिक वाक्य संयुक्त वाक्य रूप से भी चलते हैं। एक विधेयात्मक क्रिया अपने उद्देश्य के साथ एक वाक्य बनाती है। यही वाक्य का लक्षण है। 'राम सो रहा है' पूरा एक वाक्य है। केवल उद्देश्य वाक्य नहीं—'राम, सुशीला, गोविन्द' यह वाक्य नही। केवल क्रिया भी वाक्य नहीं—'करता है, सो गया, किया था' यह वाक्य नही। उद्देश्य का उस की क्रिया से अन्वय हो, तब वाक्य—'राम बैठा है' वाक्य है। परन्तु 'राम, गोविन्द ने किया था, सो गया' यह कोई वाक्य नहीं। किस उद्देश्य से किस क्रिया का संबन्ध है, ठीक नहीं मालूम पडता। 'माता और पिता बच्चो का पालन करते हैं' यहाँ पर एक ही क्रिया 'पालन करने' से दो कर्ता-कारको का अन्वय है, इस लिए एक वाक्य है। परन्तु—

राम पढता है, काम भी करता है

यह 'संयुक्त वाक्य' हो गया। दो क्रियाएँ हैं, दो वाक्य हैं—'राम पढता है' 'राम काम भी करता है'। परन्तु यो भिन्न प्रयोग भले नही लगते। कर्ता दोनो क्रियाओ का एक है—'राम'। इस लिए 'भी' समुच्चायक अव्यय दे कर एक संयुक्त-वाक्य बना दिया। भिन्न कर्ता और भिन्न क्रियाएँ हो, तो विशेष अर्थ ध्वनित करने के लिए संयुक्त-वाक्य—

'राम आया और मै यहाँ से चला'

मतलब यह कि राम के आते ही तुरन्त मै चल पड़ूँगा, एक

से या प्रयोग-वैशिष्ट्य से रूप बदलते देखे जाते हैं। परिवर्तन होता ही रहता है।

आम का फल प्रारम्भ में जरा-सा होता है। रंग हरा और स्वाद कडवा। फिर वह धीरे-धीरे रंग-रूप बदलता है। काल-क्रम से बडा होता जाता है और स्वाद खट्टा होता जाता है। सुगन्ध में भी विशेषता आती जाती है। फिर वह पक कर रग मे कुछ लाल, पीला या जोगिया हो जाता है और स्वाद मीठा हो जाता है। कभी खटास भी रह जाता है। तब खटमिट्ठा होता है। कोई आम पकने पर भी खट्टा ही रहता है। अब देखिए कि प्रारम्भ से अब तक उस फल के रूप-रंग और स्वाद-उपयोग मे कितने परिवर्तन हुए! ये सव परिवर्तन कालकृत हैं।

प्रयोग-भेद से भी चीज बदलती है। चावल प्राकृतिक पदार्थ है। रंग-रूप सामने है। इन का प्रयोग 'भात' के रूप में जब आप करते हैं, तो रूप, रंग और स्वाद मे कितना परिवर्तन देखते हैं? पहले का सा कडापन नही और स्वाद बढिया। भात बनाते समय गुड़ डाल दें, तब और ही चीज। यदि दूध-चीनी मिला दे, तो 'खीर' तयार। दाल-नमक मिला कर पकाएँ, तो 'खिचड़ी' बन गई, अलग चीज। तो, चावलो के ये प्रयोग-कृत रूप-भेद हुए।

भाषा के शब्दों मे रूप-भेद

इसी तरह 'शब्द' एक प्राकृतिक चीज है। मनुष्य ने शब्द का उपयोग किया और भाषा बनी। भाषा शब्दात्मक है, इस लिए इस का रूप बदलता है। दो तरह से भाषा के रूप मे—इस के शब्दो मे—परिवर्तन होता है, काल से और प्रयोग से।

कालकृत शब्दो के रूप मे जो परिवर्तन होता है, उस का विवेचन 'भाषाविज्ञान' मे, यानी निरुक्त-शास्त्र मे होता है और प्रयोगकृत रूप-परिवर्तन व्याकरण मे बतलाया जाता है। प्रथम प्रकार का परिवर्तन

'शब्द-विकास' कहलाता है और दूसरे का नाम व्याकरण में 'वर्ण-सन्धि' रखा गया है।

वह सम्पूर्ण परिवर्तन पाँच तरह का है:—

> वर्णागमो वर्णविपर्य्ययश्च,
> द्वौ चाऽपरौ वर्णविकारनाशौ।
> धातोस्तदर्थातिशयेन योगः,
> तदुच्यते पञ्चविधं **निरुक्तम्**।

'निरुक्त' पाँच तरह का है—१-वर्ण-आगम २-वर्णविपर्यय ३-वर्णविकार ४-वर्णनाश और ५-धातु के अर्थ में विशेषाधान। यह सब कालक्रम से भाषा मे होता है, सहस्रो वर्षो मे! उदाहरण लीजिए।

वर्णागमः—किसी शब्द में किसी दूसरे वर्ण का आ मिलना—'वर्णागम' कहलाता है—वर्ण का आगम। संस्कृत में 'सह्' धातु है। इस मे एक 'अ' और आ मिला और 'सह' रूप बन गया। 'सह' हिन्दी की धातु बन गई—'राम सब सहता है।'

कही व्यंजन वर्ण का आगम हो जाता है। संस्कृत 'गुहा' शब्द है। इस में 'हा' के पहले एक 'प्'—व्यंजन और आ जमा। प्+हा='फा' हो कर 'गुहा' का 'गुफा' बन गया।

वर्णविपर्य्यय: भाषा के विकास में उस के शब्द वर्ण-क्रम बदल भी देते हैं। सस्कृत में 'इन' विभक्ति है, जो 'बालक' में लग कर 'बालकेन' रूप बनाती है। इस 'इन' के वर्णों मे व्यत्यय हुआ—पूर्वापर क्रम बदल गया—'नइ' रूप हो गया और सन्धि हो कर न+इ='ने' विभक्ति बन गई। हिन्दी में 'बालक ने' पद बन गया। यह वर्ण-व्यत्यय से परिवर्तन हुआ। वर्णों का विपर्य्यय हो गया—क्रम बदल गया। 'बालकेन' का 'बालक ने' बन गया।

वर्णविकार : कभी एक वर्ण की जगह कोई दूसरा वर्ण आ जाता है। संस्कृत 'पठ्' का हिन्दी मे 'पढ़' हो गया। 'ठ्' की जगह 'ढ्' और 'अ' का आगम—'पढ़' धातु।

वर्णनाश : कभी किसी शब्द का कोई वर्ण उड़ जाता है—लुप्त हो जाता है। संस्कृत में 'कथ्' धातु है 'अ' का आगम हो गया और 'थ' से 'त्' उड गया—लुप्त हो गया और तब 'कह' धातु हिन्दी की बन गई। 'थ' मे 'त्' तथा 'ह' ये दो वर्ण हैं। 'त्' उड़ जाने से 'ह' रहगया।

धातु में अर्थातिशय : संस्कृत मे 'चल्' धातु गत्यर्थक है। हिन्दी में 'चल' हो कर अर्थातिशय का आधान भी हुआ। संस्कृत में 'चलिष्यथ' कहने से वही अर्थ निकले गा, जो 'गमिष्यथ' कहने से। परन्तु हिन्दी मे 'चलो गे' और 'जाओ गे' मे अन्तर है। 'चलो गे' कहने से मतलब यह है कि हम भी साथ हैं। 'जाओ गे' मे वह बात नहीं है। यह धातुगत अर्थाधान से विकास हुआ।

यह सब 'निरुक्त' या 'भाषाविज्ञान' का विषय है, जो कि कालकृत भाषाविकास पर विचार करता है।

व्याकरण को 'सन्धियाँ'

प्रयोग-कृत शब्दो के रूप-परिवर्तन पर व्याकरण विचार करता है। इसी को यहाँ 'वर्ण-सन्धि' कहते हैं। धातु में विशेष अर्थ लाने की बात छोड दे, तो प्रायः वे सब प्रकार 'सन्धि' में भी दिखाई देते हैं। प्रयोग से भी शब्द में प्रायः वे ही सब परिवर्तन होते हैं, जो कालक्रम से।

वर्णागम : 'इन' 'उन' के आगे स्वर-विभक्ति या विकरण आने पर बीच मे एक 'ह्' और आ जाता है—'इन्हे'—'इन्हो ने' और 'उन्हे'—'उन्हो ने'। 'ह्' का आगम हुआ।

वर्ण-विपर्य्यय भाषा में प्रयोग-कृत शायद ही कहीं मिले ।

वर्ण-विकार : किसी वर्ण को दूसरा ही कोई रूप मिल जाना 'वर्ण-विकार' है । 'लड़का' प्रातिपदिक है । बहुवचन मे 'लड़के' हो जाता है—'लड़के जाते है' । यहाँ 'आ' वर्ण की जगह 'ए' हो गया । यह वर्ण-विकार है । 'लडके से कह दो' यहाँ भी वर्ण-विकार है, 'आ' को 'ए' ।

'लडकी' प्रातिपदिक है ईकारान्त । 'लड़कियाँ आ रही हैं' में वर्ण विकार है । 'आँ' संलिष्ट विभक्ति बहुवचन मे है और प्रातिपदिक के अन्त्य 'ई' वर्ण को 'इय्' हो गया है । इसी तरह 'लड़कियों से कह दो' मे 'ओ' विकरण सामने है और उसी 'ई' को उसी तरह 'इय्' हो गया है । यह वर्ण-विकार है ।

कभी-कभी विकार और लोप साथ-साथ होते है । जैसे 'ई' को 'इय्' होता है, उसी तरह 'ऊ' को 'उव्' होता है । 'बाबू' और 'बहू' ऊकारान्त प्रातिपादिक हैं । 'ओ' विकरण आने पर 'ऊ' को 'उव्' हो जाता है—'बाबुओ ने' 'बहुओ ने' । 'ऊ' को 'उव्' हो गया । परन्तु 'ओ' मे 'व्' श्रुत नही होता । 'उ' तथा 'ओ' मे 'व्' वर्ण अलग सत्ता नही रखता—लुप्त हो जाता है । यह 'नित्य लोप' हिन्दी मे है । प्रयोग होते हैं—'बाबुओ ने' 'बहुओ ने' । यह प्रक्रिया है । बच्चो को सीधे समझा दिया जाता है कि 'ऊ' ह्रस्व हो गया ।

ऊपर 'आदेश' का 'व्' है; नित्य लोप है उस का । एक वर्ण की जगह दूसरे के आने को 'आदेश' कहते है । यदि प्रत्यय का वर्ण हो, तो वैकल्पिक लोप होता है—गये—गए और गयी—गई । 'व' का नित्य लोप होता है—'रावनु आवा'—'मदोदरि आई' । 'आवी' न हो गा । 'लोप' को ही 'वर्णनाश' कहते हैं । प्रकृतिगत 'व' का लोप नही होता—'चुनावों से'—'घावो पर' ।

खैर, वर्ण-विकार प्रयोग-भेद से देख लिया। 'लोप' या 'वर्णनाश' और देखिए।

वर्णनाशः किसी वर्ण का (प्रयोग-विशेष मे) लोप हो जाता है—

लिया, किया, पिया

ये सब हिन्दी की भूतकालिक पुंवर्गीय क्रियाएँ है। स्त्रीवर्गीय प्रयोग मे इन के आगे स्त्री-प्रत्यय 'ई' आ गया, तब 'या' का नित्य-लोप—

लिया+ई='लि ई'
किया+ई='कि ई'
पिया+ई='पि ई'

यह वर्ण-नाश या वर्ण-लोप हो जाने पर फिर वर्ण-विकार हुआ—प्रकृति (लि, कि, पि) की 'इ' मे और प्रत्यय 'ई' मे सन्धि हो कर दोनो का संयुक्त रूप 'ई' हो गया—

लि+ई=ली
कि+ई=की
पि+ई=पी

दवा ली, दवा की, दवा पी।

इस तरह शब्दो में प्रयोग–कृत रूपभेद होता है, जो पुस्तक मे यथास्थल स्पष्ट किए गए हैं।

संस्कृत की सन्धियाँ

संस्कृत की भी सरल सन्धियाँ हिन्दी में सब चलती हैं। सवर्ण-दीर्घ सन्धि—

राम+आश्रम=रामाश्रम
रमा+आश्रम=रमाश्रम

हिन्दी में भी 'त'+'आ'='ता' और 'य'+'आ'='या'—'आता'–'आया' देख आए हैं। 'त' तथा 'य' कृदन्त प्रत्यय हैं और 'आ' पुं-विभक्ति है।

कवि+ईश्वर=कवीश्वर

हिन्दी मे 'कि'+ई='की' सामने है। यानी, हिन्दी में विभिन्न पदो के स्वर मिल कर 'सवर्णदीर्घ' सन्धि नहीं करते; एक ही पद के वर्ण वैसी सन्धि कही करते हैं। संस्कृत मे प्रयोग-भेद से रूप-भेद बहुत ज्यादा होते हैं। हिन्दी मे यह कठिनाई नही है।

'गुण-सन्धि'—

महा+ईश=महेश
सर्व+उपमा=सर्वोपमा

अ+इ='ए' और अ+उ='ओ'।

हिन्दी मे—

पढ+इ=पढ़े
पढ़+उ=पढ़ो

प्रकृति के और प्रत्यय के स्वर में यहाँ सन्धि।

संस्कृत मे—

देव+ऋषि=देवर्षि

सीधी बात कही जाए, 'अ' के बाद या 'आ' के बाद 'ऋ' आए, तो वह 'र्' बन कर अगले सस्वर व्यंजन पर चली जाती है। हिन्दी में 'ऋ' की सन्धि किए बिना—

पितृ-ऋण, मातृ-ऋण
देव-ऋण, बसन्त ऋतु

इस तरह सामासिक शब्द ज्यादा चलते हैं, परन्तु 'देवर्षि' 'ब्रह्मर्षि' 'राजर्षि' जैसे महनीय शब्द संस्कृत के तद्रूप यहाँ चलते हैं।

'इ' को 'य्' आदि प्रसिद्ध चीजे हैं—

प्रति+आगमन=प्रत्यागमन

ये सब प्रयोग-कृत शब्दो के रूप-परिवर्तन व्याकरण मे 'सन्धि' नाम से प्रसिद्ध हैं।

व्यंजनो मे भी—

तत्+आकार=तदाकार

'त्' को 'द्' हो गया है, स्वर परे होने के कारण।

वाक्+मय=वाङ्मय

'क्' को 'ङ्' हो गया है। हिन्दी मे संस्कृत के बने-बनाए 'तदाकार' 'वाङ्मय' आदि शब्द गृहीत हैं।

गम्यमान शब्द का अप्रयोग

भाषा के प्रयोग मे अनेक वैचित्र्य सामने आते हैं। हिन्दी वैज्ञानिक भाषा है। अनावश्यक यहाँ कोई विभक्ति भी नही दी जाती है। मतलब निकल गया, तो फिर उस के लिए शब्द-प्रयोग व्यर्थ ! 'अर्थश्चेदवगतः, किं शब्देन ?' कई बार कई शब्द प्रसंग से, या प्रयुक्त शब्द रूप से ही, श्रोता के मन में आ जाते हैं। तब फिर उन (गम्यमान) शब्दो का प्रत्यक्ष प्रयोग बे-मजे हो जाता है। आप के कोई मित्र मार्ग में मिल गए और आप ने पूछा—'किधर को ?' तो, इस से 'चले' क्रिया-

पद स्वतः सामने आ जाता है। 'किधर को ?' मतलब का है—'किधर को चले ?' ऐसी स्थिति में 'किधर को ?' इस वाक्य को 'अधूरा' न कहा जाए गा। 'चले' क्रिया गम्यमान है। यदि गम्यमान न हो, तब अवश्य शब्द-प्रयोग आवश्यक होगा। 'सबेरे कब उठो गे ?' पूरा वाक्य है। इस की जगह—'सबेरे कब ?' नही कह सकते। मतलब न निकले गा। वाक्य लॅगडा है—चले गा नही। हॉ, यदि प्रकरण से बात आ जाए, तो बात दूसरी है। किसी ने आप से कहा—'मै सबेरे आप से मिलने आऊँ गा'। आप ने इसके उत्तर में पूछा—'सबेरे कितने बजे ?' तो 'आओ गे' क्रिया स्वतः उपस्थित हो जाती है। 'सबेरे कितने बजे ?'—मतलब है—'सबेरे कितने बजे आओ गे ?' इस गम्यमानता मे भी 'आओ गे' कहा जाए, तो व्याकरण से ठीक, परन्तु वाक्य बढिया न रहे गा।

इसी तरह—'कल जाऊँ गा' मे कर्ताकारक प्रयुक्त नही है। 'जाऊँगा' क्रियारूप से ही कर्ता 'मै' उपस्थित हो जाता है। यदि कोई आप से कहे—'मै आज काशी जा रहा हूॅ। आप ?' तो उत्तर होगा—'कल' या, चाहे जो। किसी ने कहा—'आज जा रहा हूॅ। चलो गे ?' तो कर्ता-कारक 'मै' तथा 'तुम' अप्रयुक्त हैं। क्रिया-रूपो से उन की उपस्थिति हो जाती है। उत्तर मे कहा जाए—'मै कल आऊँगा' तो यहॉ 'मै' ठीक जमता है। कभी-कभी जोर देने के लिए शब्द-प्रयोग किया जाता है—'मै कहता हूॅ कि तुम चुप रहो'। यहाँ 'मै' और 'तुम' जोर देने के लिए है। अन्यथा, इन के प्रयोग की जरूरत न होती।

शब्द-प्रयोग होते हैः—

'जमे बैठे हो। क्या तुम्हे कोई काम नही ?'

यहॉ 'करना' लुप्त है। 'तुम्हे काम नही है'। मतलब—'तुम्हे कोई काम नही करना है ?' 'करना' अप्रयुक्त है।यहॉ 'करना' स्वतः

उपस्थित हो जाता है । 'काम' किया ही जाता है । जो किया जाए, वह काम । सो 'काम' शब्द 'करना' को उपस्थित कर देता है ।

इसी तरह सब समझिए । ऐसे कलात्मक प्रयोगों को 'अधूरे वाक्य' न कहना-समझना चाहिए ।

हिन्दी शब्दानुशासन

(भाषाविज्ञान से संवलित हिन्दी का मौलिक व्याकरण)

लेखक, पं० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री

बढ़िया छपाई, बढ़िया कागज, पक्की जिल्द

बड़े आकार के लगभग सात सौ पृष्ठ—मूल्य दस रुपए मात्र

'सरल शब्दानुशासन' इसी महाग्रन्थ का संक्षिप्त रूप है। 'हिन्दी शब्दानुशासन' मे हिन्दीव्याकरण की पूर्णता तो है ही, साथ ही हिन्दी की उत्पत्ति पर 'पूर्वपीठिका' मे अभिनव प्रकाश है। परिशिष्ट भाग मे अवधी-राजस्थानी-ब्रजभाषा-मैथिली आदि समृद्ध हिन्दी-परिवार का परिचय है। इन हिन्दी-बोलियो का संक्षिप्त व्याकरण भी दिया गया है और ब्रजभाषा के रूप-गठन पर नवीन प्रकाश डाला गया है। सिद्ध किया गया है कि 'खड़ी बोली' और 'राजस्थानी' का स्वतंत्र उद्भव-विकास है। ब्रजभाषा इन्ही दोनो बोलियो का सम्मिश्रण है—पर मिसरी जैसी मधुर चीज काव्य में बन गया है वह सम्मिश्रण।

परिशिष्ट मे ही भाषाविज्ञान के मुद्रित सभी ग्रन्थो की मान्यताओ पर विचार किया गया है—उन मान्यताओ पर, जिन का संबन्ध हिन्दी से है।

इस ग्रन्थ की उद्भावना वाजपेयी जी ही कर सकते थे। महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने वाजपेयी जी को इस युग का सब से बड़ा नैरुक्त और वैय्याकरण जो कहा था, उस की सत्यता इस महाग्रन्थ से सामने आ गई है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी शब्दानुशासन' के संबन्ध में लिखा है:—

"वाजपेयी जी का यह 'हिन्दी शब्दानुशासन' दीर्घकालीन चिन्तन-मनन का परिणाम है। वाजपेयी जी संस्कृत व्याकरण के सुपंडित हैं, पर हिन्दी को संस्कृत की पूर्ण अनुयायिनी मानने का आग्रह उनमे नहीं है। वे हिन्दी की प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षक हैं। इस पुस्तक मे उन्होने हिन्दी की इस प्रकृति का अच्छा परिचय दिया है। उन्होने निष्कर्षों तक पहुँचने की पूरी प्रक्रिया बता दी है और विचारशील पाठक को स्वयं सोचने-समझने को स्वतंत्र छोड़ दिया है। यह इस पुस्तक की बड़ी भारी विशेषता है।

वाजपेयी जी का यह ग्रन्थ हिन्दी-व्याकरण को एक नए परिपार्श्व मे देखने का आलोक देता है। अभी तक जो व्याकरण लिखे गए हैं, वे प्रयोग-निर्देश तक ही सीमित हैं। **इस पुस्तक मे पहली बार व्याकरण के तत्त्वदर्शन का स्वरूप स्पष्ट हुआ है।**"

डाक-खर्च पृथक्। प्राप्ति-स्थान

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी